सम्राट अग्रसेन - एक संक्षिप्त परिचय

(अग्रवाल समुदाय के संस्थापक)

डॉ यतेंद्र शर्मा

श्री राम कथा संस्थान पर्थ

कार्यालय: ३५ मायना रिट्रीट, हिलरीज, पर्थ, ऑस्ट्रेलिया – ६०२५

वेबसाइट: https://shriramkatha.org

ई-मेल: srkperth@outlook.com

श्री राम कथा संस्थान पर्थ उद्देश्य

- श्री राम कथा संस्थान भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी महाराज (१४वीं शताब्दी) की शिक्षाओं पर आधारित एक सनातन वैष्णव धार्मिक संस्था है।
- श्री संस्थान का सिद्धांत धर्म, जाति, लिंग एवं नैतिक पृष्ठभूमि के आधार पर भेदभाव रहित है। 'हरि को भजे सो हरि को होई' संस्थान का मूल मन्त्र है।
- श्री संस्थान का मानना है कि शुद्ध हृदय एवं निःस्वार्थ भाव भक्ति ईश्वर को अति प्रिय है। सभी प्रभु-भक्त एक दूसरे के भाई बहन हैं।
- ब्रह्म मनोभाव: भगवान् श्री राम, माता सीता एवं उनके विविध अवतार ही सर्वोच्च ब्रह्म हैं। वह सर्व-व्याप्त एवं विश्व के सरंक्षक हैं।
- आत्मा मनोभाव: आत्मा का अस्तित्व सर्वोच्च ब्रह्म के परमानंद पर निर्भर है। आत्मा को सर्वोच्च ब्रह्म ही निर्देशित एवं प्रबुद्ध करते हैं। श्री राम, माता सीता एवं उनके अवतार ही जीवन का अंतिम उद्देश्य मोक्ष दिलाने में समर्थ हैं।
- माया मनोभाव: माया प्रकृति के तीन गुण - सत, रज और तमस, के प्रभाव से प्राकट्य होती है। माया को सर्वोच्च ब्रह्म ही नियंत्रित करने में समर्थ हैं। सर्वोच्च ब्रह्म पर ध्यान केंद्र करने से माया का विनाश होता है, और जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा मिल मोक्ष की प्राप्ति होती है।
- श्री संस्थान इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निरंतर सनातन धार्मिक पत्रिकाएं, पुस्तकें, पुस्तिकाएं, काव्य ग्रन्थ आदि की रचनाएं एवं प्रकाशन करती है। साथ ही, समय समय पर श्री राम एवं अन्य धार्मिक कथाओं के संयोजन का भी प्रयास करती रहती है।

सम्राट अग्रसेन - एक संक्षिप्त परिचय

(अग्रवाल समुदाय के संस्थापक)

डॉ यतेंद्र शर्मा

प्रकाशक

श्री राम कथा संस्थान पर्थ
३५ मायना रिट्रीट, हिलरीज़, वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया – ६०२५
वेबसाइट: https://shriramkatha.org
ईमेल: srkperth@outlook.com

क्रमावली

प्रस्तावना.....5
वंशावली.....8
माता पिता.....11
जन्म, शिक्षा एवं उपलब्धि.....14
महाभारत युद्ध का दसवां दिन.....21
साम्राज्य वापसी, काराबंधन एवं पलायन.....27
महालक्ष्मी स्तुति एवं नवीन राज्य स्थापना.....31
विवाह.....37
गृहस्थ जीवन एवं अठारह यज्ञ.....39
शिक्षाएं/ उपलब्धियां.....42
सम्राट अग्रसेन के स्मरण की फलश्रुति.....54
अग्रोहा धाम एवं मंदिर अग्रोहा धाम.....58
भगवान् अग्रसेन पूजन विधि एवं आरती.....67
पूजा सामग्री.....67

प्रस्तावना

हमारे पित्रों की ऐसी मान्यता रही है कि परिवार की सत्य निधि उसकी नैतिकता एवं आध्यात्मिकता का मूल्यांकन है। तभी तो उन्होंने कहा है:

धन खोया, कुछ नहीं खोया । स्वास्थ्य खोया, कुछ खोया ।
चरित्र खोया, सब कुछ खोया ।

अपने बच्चों में नैतिकता और आध्यात्मिकता का समावेश कैसे किया जाय, यह आज की पीढ़ी का एक ज्वलंत प्रश्न है। अभाग्यवश हम सभी इस विश्व की प्रतिस्पर्धा में इतने सलग्न हैं कि अपनी नई पीढ़ी को देने के लिए हमारे पास समय का अभाव है। मुझे स्मरण है कि मेरे बचपन में मेरे पितामह मेरे निन्द्रादेवी के आगोश में समाने से पहले प्रति रात्रि हमारे महान ऋषियों, माताओं, सम्राटों एवं देश भक्त भारत माता पर बलिदान हुए सपूतों की कथाएं सुनाये करते थे।

हम सभी के अथक प्रयास 'शांति' प्राप्त करने के रहते हैं। हम में से अधिकतर कुछ ऐसा विश्वास रखते हैं कि धन प्राप्ति 'शांति' प्राप्त करने का एक साधन है, और धन प्राप्त करने के लिए कठोर परिश्रम करते हैं। कुछ लोग ऐसा भी विश्वास रखते हैं कि कामिनी जीवन में आनंद का सर्वोत्तम माध्यम है, तो कुछ सामाजिक प्रतिष्ठा को ही जीवन का ध्येय समझ लेते है, और इसकी प्राप्ति के लिए जीवन की समस्त ऊर्जा लगा देते हैं। श्रुति में यह तीनों वस्तुएं 'कनक, कामिनी और कीर्ति' नाम से उल्लेखित हैं। क्या आप ऐसा नहीं सोचते कि इन तीनों मायावी वस्तुओं की प्राप्ति के लिए जितना संघर्ष करते हैं, उसकी प्राप्ति करने पर कामना उस से भी आगे बढ़ जाती है? यह मायावी तृष्णा शांति देना तो दूर, जीवन में अशांति घोल देती है।

अभाग्य से आप इतिहास उठा कर देख लीजिये। सृष्टि के आरम्भ से ही मानव हर दम दुःखी ही रहा है। कुछ ही ऐसी महान आत्मा पैदा हुईं हैं जो हर हाल में सुखी रहने का दावा कर सकती हैं। क्या हम लोगों को इन महान आत्माओं के जीवन को समझने का एवं प्रसन्न रहने का कारण जानने का प्रयास नहीं करना चाहिए जिस से कि हम उनकी जीवन शैली के अनुसरण का प्रयास कर 'शांति' की प्राप्ति कर सकें? मेरी समझ से यही कारण रहा होगा कि हमारे पितृ बचपन में इन महान पुरुषों, माताएं, ऋषियों आदि की महान गाथा को हमें नियमित रूप से अवगत कराते रहते थे ताकि

उन से शिक्षा लेकर हम उनके बताये मार्ग पर चल कर अपने जीवन में नैतिकता और आध्यात्मिकता का संचार कर सकें और अपने जीवन में मानसिक शांति के साथ साथ सुख और समृद्धि ला सकें।

दयामूर्ति भगवान् हम पर अत्यंत कृपालु रहें हैं और समय समय पर ऐसी महान आत्माओं का पृथ्वी पर अवतरण कराते रहें हैं जिनकी जीवन शैली का अनुसरण कर हमें जीवन में प्रसन्नता और शांति का मार्ग मिल सके। यह महान आत्माएं ईश्वरीय दूत के रूप में अवतरित हमारे लिए उदाहरण स्वरुप जीवन शैली प्रदान करती रही हैं। इन महान आत्माओं का जन्म आप और हमारी तरह मनुष्य रूप में ही हुआ है और जीवन प्रक्रिया में हमारी ही तरह कष्ट उठाये हैं। हम ऐसा नहीं कह सकते कि इनके पास तो कोई जादुई शक्ति थी, और हम साधारण इंसान हैं। ऐसी ही एक महान आत्मा का ५,२०० वर्ष पूर्व सम्राट अग्रसेन महाराज के रूप में अवतरण हुआ था।

इतिहासकारों ने तथ्य के साथ सम्राट अग्रसेन की वंशावली का चित्रण तो अवश्य किया है लेकिन उनकी नैतिकता, आध्यात्मिकता और शान्ति के सन्देश एवं शिक्षाओं पर उतना प्रकाश नहीं डाला जितना आवश्यक था। मैंने यहां इस पुस्तिका के माध्यम से महान सम्राट अग्रसेन की इन शिक्षाओं को महत्व देते हुए उनकी जीवन शैली को चित्रित करने का प्रयास किया है। यह कथाएं मैंने अपने पितामह, संत वाणियों एवं लोक कथाओं के माध्यम से सुनी और पढ़ी हैं। इतिहासकारों द्वारा इसका अनुमोदन किया भी जा सकता है, अथवा नहीं। मेरा उद्देश्य कथाकारों को नकारना नहीं, बल्कि जन साधारण के लिए उनकी अतिरिक्त जीवन शैली का प्रस्तुतीकरण है।

जब आप इन महान आत्मा सम्राट अग्रसेन की जीवन कहानियों को पढ़ेंगे और सुनेंगे तो आपको अवश्य ऐसा आभास होगा कि उनका समस्त जीवन लोक कल्याण के लिए ही समर्पित था। वह 'अग्रवाल समाज' के संस्थापक ही नहीं थे जैसा कि जग जानता है, अपितु सनातन धर्म के रक्षक, सत्य, नैतिकता और दयालुता के प्रतीक थे।

उनके शब्दों को सदा याद रखें:

चिन्नोपि रोहति तरुः, क्षीणोप्युपचीयते पुअनचंद्रा |
इति विमृशांतः संताः, सन्तप्यन्ते न विपुलता लोके ||

जिस प्रकार वृक्ष कटने के बाद भी हरा भरा हो जाता है, चन्द्रमा कृष्ण पक्ष में छोटा तथा शुक्ल पक्ष में बड़ा हो जाता है, उसी प्रकार जीवन में कठिनाईयां आती जाती रहती हैं, और समय आने पर स्वयं ही लोप हो जाती हैं।

मैं आप सब को महान सम्राट अग्रसेन की जीवन कथाएं पढ़ने और सुनने के लिए शुभ कामनाएं अर्पित करता हूँ। श्रुति कहती हैं कि जो भी भगवान् सम्राट अग्रसेन की जीवन कथाओं को वर्ष में एक बार भी, विशेषकर उनकी जयन्ती पर पढ़ेगा अथवा सुनेगा, उसकी समस्त विपदाओं का नाश होकर उसे मानसिक शांति, प्रसन्नता एवं भौतिक सुखों की उपलब्धि होगी। श्रुति ऐसा भी कहती है कि महर्षि गर्ग आचार्य के वरदान स्वरुप सम्राट अग्रसेन अमरत्व को प्राप्त हैं, कैलाश पर्वत पर वास करते हैं और जब भी श्रद्धा और प्रेम से उनका आवाहन किया जाता है, तब सूक्ष्म रूप में पधारकर भक्तगणों को आशीर्वाद देते है। भगवान् सम्राट अग्रसेन आप सभी को अभिमंत्रित करें, ऐसी मेरी शुभ कामना है।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

डॉ यतेंद्र शर्मा
श्री राम कथा संस्थान पर्थ (पंजीकृत)
ऑस्ट्रेलिआ – ६०२५

वंशावली

सम्राट अग्रसेन भगवान् श्री राम के पुत्र कुश की चौंतीसवीं पीढ़ी के सम्राट माने जाते हैं। इस कारण उनके कुल का सीधा सम्बन्ध भगवान् श्री राम एवं सूर्यवंश से है।

भगवान् श्री राम के निर्वाण के बाद अयोध्या साम्राज्य को भगवान् श्री राम के दोनों पुत्रों, लव और कुश, में विभाजित कर दिया गया - उत्तरी कौसल और पूर्वी कौसल। उत्तरी कौशल के सम्राट लव बने और उन्होंने अपनी राजधानी लवनगरी बनाई जो आजकल लाहौर के नाम से जानी जाती है। पूर्वी कौशल के सम्राट कुश बने और उन्होंने अपनी राजधानी कुशावती को बनाया जो आजकल कुशीनगर, (समीप - गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, भारत) के नाम से जानी जाती है।

चक्रवर्ती सम्राट कुश के सूर्यवंश में अत्यंत धार्मिक एवं प्रभावशाली चक्रवर्ती सम्राट हुए, जिनमे प्रमुख हैं - अतिथि, निषध, नल, नभ, पुण्डरीक, ध्रुवसंधि, सुदर्शन, अग्निवर्ण, विश्वबाहु, प्रसेनजित एवं तक्षक आदि।

कीर्तिमान्तो ही मान्धाता, दिलीपोथा भागीरथा |
रघु ककुत्स्थ सागरो मरूत्तो नृप् राघवा ||

इसी सूर्यवंश में सम्राट वल्लभसेन का जन्म हुआ जो महाभारत युद्ध में धर्म का साथ देते हुए पांडवों के साथ लड़े और वीरगति को प्राप्त हुए। इन्ही के पुत्र चक्रवर्ती सम्राट अग्रसेन हुए।

हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार भारतेंदु हरिशचंद्र, जो स्वयं भी अग्रवाल समुदाय से थे (१८५०-८५), के अनुसार सम्राट अग्रसेन की वंशावली निम्न प्रकार है।

सम्राट कुश की वंशावली के अनुसार सम्राट सुदर्शन के पुत्र अग्निवर्णा हुए। सम्राट अग्निवर्णा सम्राट सुदर्शन के पश्चात् कुशावती के महान सम्राट हुए। सम्राट अग्निवर्णा के पांच पुत्र थे, जिनमे से बड़े पुत्र शिघ्र उनके निर्वाण के बाद कुशावती के सिंहासन पर बैठे।

इसी वंशावली में सम्राट मोहनदास महाराज और सम्राट नेमिनाथ का भी जन्म हुआ। सम्राट मोहनदास जी की रंगनाथ जी के चरणों में बड़ी भक्ति थी। उन्होंने कावेरी के तट पर श्री रंगनाथ जी के अनेक मंदिर बनवाए। सम्राट नेमिनाथ के बारे में कहा जाता

है कि उन्होंने नेपाल बसाया। सम्राट नेमिनाथ के पुत्र सम्राट वृंद ने वृंदावन में वृंदावन देवी जी की मूर्ति स्थापित की।

इसी सूर्यवंस में सम्राट कुश की तीसवीं पीढ़ी में सम्राट विश्वसाह हुए। सम्राट विश्वसाह के पुत्र प्रतापी सम्राट प्रसेनजित हुए जिन्होंने विशाल साम्राज्य प्रतापनगर की स्थापना की। इन्हीं के पुत्र सम्राट वृहत्सेन ने साम्राज्य की सीमाओं को हरियाणा और राजस्थान तक पहुंचा दिया।

सम्राट वृहतसेन के पुत्र सम्राट वल्लभसेन हुए। सम्राट वल्लभसेन के पुत्र प्रतापी चक्रवर्ती सम्राट अग्रराज हुए, जिन्हें चक्रवर्ती सम्राट अग्रसेन या अग्रनाथ के नाम से भी जाना जाता है। इन्होंने ही अग्रवाल/ वैश्य समाज की स्थापना की।

श्रुति के अनुसार चक्रवर्ती सम्राट अग्रसेन की वंशावली को निम्न प्रकार से चित्रित किया गया है। भगवान् राम के दो पुत्र हुए, सम्राट लव एवं सम्राट कुश। सम्राट अग्रसेन चक्रवर्ती सम्राट कुश के वंसज थे।

सम्राट कुश की वंशावली

१. अतिथि
२. निशाध
३. नल
४. नभ
५. पुण्डरीक
६. क्षेमन्धवा
७. देवानीक
८. अहिनागु
९. रुरु
१०. परिपत्र
११. बाला
१२. उक्ठा
१३. वज्रनाभ
१४. शंख
१५. व्युषितस्व प्रथम
१६. व्युषितस्य द्वितीय

१७. हिरण्याभ
१८. पुस्य
१९. ध्रुवसन्धि
२०. सुदर्शन
२१. अग्निवर्णा
२२. शिघ्र
२३. मरू
२४. प्रससुरिता
२५. सुसन्धि
२६. अमरसा
२७. माहश्वत
२८. विशोक
२९. विश्रुतावन्त
३०. विश्वसाह
३१. प्रेसनजित
३२. वृहत्सेन
३३. वल्लभसेन
३४. अग्रसेन

माता पिता

सम्राट वल्लभसेन एवं माता भगवती देवी के गृह उनके पुत्र के रूप में चक्रवर्ती सम्राट अग्रसेन ने द्वापर के अन्तिम काल और कलियुग के प्रारम्भ में आज से करीब ५२०० वर्ष पूर्व जन्म लिया। सूर्यवंशी क्षत्रिय कुल के दीपक महाराजा वल्लभसेन के साम्राज्य को राम-राज का ही रूप कहा जाता है। उनके राज्य में कोई दुःखी या लाचार नहीं था। वे अपनी प्रजा में बहुत लोकप्रिय थे। वे एक धार्मिक, शांति दूत, प्रजा-वत्सल, हिंसा विरोधी, करुणानिधि, सब जीवों से प्रेम एवं स्नेह रखने वाले दयालु राजा थे।

सम्राट वल्लभसेन हरियाणा प्रांन्त में सरस्वती, इषदवती और घग्घर नदी के संगम पर प्रतापनगर राज्य के राजा थे। सम्राट वल्लभसेन की महारानी का नाम साम्राज्ञी भगवती देवी था, जो विदर्भ राज्य की राजकुमारी थीं। सम्राट वल्लभसेन के छोटे भाई का नाम कुन्द्सेन् था। उनके सेनापति का नाम केशी था, जो भगवान् श्री कृष्ण के भ्राता बलराम के शिष्य थे। उनका साम्राज्य अत्यंत समर्थ और प्रभावशाली था।

दुर्भाग्य से सम्राट वल्लभसेन बहुत समय तक निःसंतान रहे। मंत्रियों ने सम्राट वल्लभसेन से दुसरा विवाह करने का आग्रह किया जैसा कि उस काल में प्रथा थी। परन्तु सम्राट वल्लभसेन ने दूसरा विवाह करने से मना कर दिया। उनका मानना था कि सुर्यवंशी क्षत्रिय भगवान् श्री राम की तरह एक पत्नी-धारी होते हैं। पुत्र प्राप्ति के लिए सम्राट वल्लभसेन और साम्राज्ञी भगवती ने सद्गुरु महर्षि गर्ग आचार्य की शरण में जाना निश्चय किया।

जैसा कि सब जानते हैं महर्षि गर्ग भगवान् कृष्ण के नंदगाव परिवार के सद्गुरु थे। श्रुति ऐसा कहती हैं कि महर्षि गर्ग जो भगवान् शंकर के पुरोहित माने जाते हैं और कैलाश पर्वत पर वास करते हैं, उन्होंने भगवान् शंकर के आग्रह पर भगवान् कृष्ण के जन्म समय पर पृथ्वी पर अवतरण किया था। भगवान् शंकर ने भगवान् कृष्ण के जन्म पूर्व उनको निर्देश दिया कि भगवान् विष्णु के भगवान् कृष्ण के रूप में पृथ्वी पर अवतरित होने से पूर्व ही आप ब्रजभूमि में अवतरित हों और उनका बाल्काल में यथोचित मार्ग दर्शन करें। महर्षि संदीपनी जी से भगवान् कृष्ण को पूर्ण ज्ञान दिलवाने की व्यवस्था भी करें।

महर्षि गर्ग आचार्य सम्राट वल्लभसेन के पिता सम्राट वृहत्सेन के समय से ही पारिवारिक सद्गुरु थे। सम्राट वृहत्सेन की भेंट महर्षि गर्ग आचार्य से सर्व प्रथम हस्तिनापुर में हुई थी। एक बार एक धार्मिक समारोह में पितामह गंगा-पुत्र भीष्म के

आमंत्रण पर सम्राट वृहत्सेन हस्तिनापुर गए हुए थे। वहां महर्षि गर्ग यज्ञ संचालन कर रहे थे। उनकी दिव्य प्रतिभा से प्रभावित हो वह उनके चरणों में नत मस्तक हो गए तथा उनसे अपना शिष्य स्वीकार करने की प्रार्थना करने लगे। उनकी विनम्र प्रार्थना पर महर्षि गर्ग ने उनको अपना शिष्य बना लिया और उनके मार्ग दर्शक बने। महर्षि गर्ग के सरंक्षण में सम्राट वृहत्सेन ने एक लम्बे काल तक प्रतापनगर पर शासन किया और वृद्धावस्था में संन्यास ग्रहण कर महर्षि गर्ग की आज्ञा से पुत्र वल्लभसेन को सिंहासन पर बैठाया। महर्षि गर्ग सम्राट वृहत्सेन के संन्यास ग्रहण के पश्चात् भी प्रतापनगर साम्राज्य के गुरु बने रहे। महर्षि गर्ग के सरंक्षण में सम्राट वल्लभसेन ने कई छोटे साम्राज्यों को अपने राज्य में मिलाकर अपने राज्य को बढ़ाया।

गुरु महर्षि गर्ग के आश्रम में पहुँच सम्राट वल्लभसेन ने उन्हें अपने हृदय की व्यथा बतायी तथा संतान प्राप्ति के लिए निर्देश की प्रार्थना की। तब महर्षि गर्ग के निर्देशानुसार सम्राट वल्लभसेन और विदर्भ की कन्या भगवती देवी ने मिलकर शिवजी की आराधना की। उनकी आराधना से प्रसन्न होकर सर्वव्यापी और सब के हृदय में वास करने वाले भोले नाथ भगवान शंकर प्रगट हुए, और उन्हें दो पुत्र का आशीर्वाद दिया। कालांतर में सम्राट वल्लभसेन के गृह में अग्रसेन जी और उनके छोटे भाई शूरसेन जी का पुत्रों के रूप में जन्म हुआ।

श्रुति के अनुसार महर्षि जैमिनी जी ने हस्तिनापुर के चक्रवर्ती सम्राट जन्मेजय जी (पुत्र चक्रवर्ती सम्राट परीक्षित) को सम्राट अग्रसेन के जन्म के बारे में निम्न जानकारी दी है।

भगवत्तयां वल्लभना प्राप्तो वंसकारः सुता |
मनुसयाग्र्यस्य यस्यासित कांतिसचंद्रसमो यथा ||

हे सम्राट जन्मेजय, महारानी भगवती देवी को सम्राट वल्लभसेन से एक महान मानव पुत्र की प्राप्ति हुई है, जिनकी कांति चन्द्रमा के समान है।

सम्राट वल्लभसेन हस्तिनापुर चक्रवर्ती सम्राट पाण्डु के घनिष्ट मित्रों में से थे। कुरु शासन के प्राण एवं अत्यंत आदरणीय भीष्म पितामह उनको पुत्रवत प्रेम करते थे। कुरुओं के सद्गुरु भगवान् महर्षि वेदव्यास की उन पर विशेष कृपा थी। महर्षि वेदव्यास जी के पिताश्री महर्षि पाराशर जी के धर्मक्षेत्र आश्रम को जब पापी सम्राट सहस्त्रार्जुन ने ध्वस्त कर दिया था, तब महर्षि वेदव्यास के अनुरोध पर एवं भीष्म पितामह के आग्रह पर सम्राट वल्लभसेन ने महर्षि वेद व्यास के धर्मक्षेत्र आश्रम की स्थापना में मदद की थी।

सम्राट अग्रसेन - एक संक्षिप्त परिचय

सम्राट वल्लभसेन के शासन काल में पांडवों और कौरवों के बीच महाभारत युद्ध छिड़ गया था। युद्ध हेतु सभी मित्र राजाओं को, पांडवों और कौरवों दोनों ने ही, दूतों द्वारा निमंत्रण भेजे गए थे। पांडव दूत ने सम्राट वृहत्सेन की महाराज पांडु से मित्रता की स्मृति कराते हुए राजा वल्लभसेन से अपनी सेना सहित पांडवों की ओर से युद्ध में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया था। महाभारत के इस युद्ध में महाराज वल्लभसेन अपने पुत्र अग्रसेन तथा सेना के साथ पांडवों के पक्ष में लड़ते हुए युद्ध के १०वें दिन भीष्म पितामह के बाणों से बिंधकर वीरगति को प्राप्त हो गए।

महाभारत युद्ध में भाग लेने जब सम्राट वल्लभसेन अपने पुत्र राजकुमार अग्रसेन के साथ कुरुक्षेत्र गए तब अपने राज्य का भार उन्होंने अपने छोटे भाई कुन्दसेन् को सौंपा था।

सम्राट वल्लभसेन के महाभारत युद्ध में वीरगति प्राप्त होने पर पुत्र अग्रसेन व्याकुल हो गए। श्री कृष्ण ने तब उन्हें सांत्वना देते हुए असारता का पाठ पढ़ाया। लगातार अठारह दिन तक महाभारत युद्ध में साथ देकर, युद्ध समाप्ति पर पांडवों की ओर से उन्हें आशीर्वाद और धन-धान्य देकर विदा किया। उन्हें भगवान् श्री कृष्ण ने स्वयं गले लगाकर चक्रवर्ती सम्राट बनाने का आशीर्वाद दिया तथा गुरुदेव महर्षि गर्ग जी से चरण पकड़कर प्रार्थना की कि वह उनका उचित समय आने पर राज्याभिषेक कराएं।

जन्म, शिक्षा एवं उपलब्धि

इतिहासकारों के अनुसार संभवतः ४२५० बी सी में सम्राट अग्रसेन का जन्म अश्विन शुक्ल प्रतिपदा को हुआ था। यह दिवस नवरात्रि का प्रथम दिवस है, जिसे अग्रसेन जयंती के रूप में मनाया जाता है।

जन्म के ग्यारह दिन बाद राजकुमार का नाम ग्रहण संस्कार हुआ। मुख्य पुरोहित ने उनका नाम अग्रसेन रखा। अग्र शब्द मुख्य पुरोहित ने इसलिए चुना कि राजकुमार अपने नाम को चरित्रार्थ करते हुए भविष्य में विज्ञान, दर्शन एवं शस्त्रों की विद्या में सर्वश्रेष्ठ हों। अग्र शब्द का अर्थ - सभी विद्याओं में अग्रिम ।

अतीतयैकादशाहमं तू नामकर्म तदाभावत |
अग्रसेन इति प्रीता पुरोधा नाम चाकरोत ||
श्रुतिथा शस्त्रे शास्त्रे च परेसामं जीवने तथा |
चक्रे धातोरर्थयोगाद अग्रानाम्नामसंभवम ||

आर्यावत भारतवर्ष में उस समय ऐसी प्रथा थी कि राजकुमार अथवा राजकुमारियों को राज्य एवं महल से दूर विद्या प्राप्ति के लिए गुरु के आश्रम गुरुकुल भेज दिया जाता था। इसी प्रथा का अनुसरण करते हुए महर्षि गर्ग आचार्य के निर्देशानुसार ६ वर्ष की अवस्था में राजकुमार अग्रसेन को महर्षि तांडव्य के आश्रम में उज्जैन भेज दिया गया। राजकुमार अग्रसेन जी की शिक्षा तांडव्य ऋषि के आश्रम में संपन्न हुई। राजकुमार अग्रसेन ने सभी प्रकार की विद्याओं में प्रभुता पाई। वह एक अत्यंत विनम्र, आज्ञाकारी, सत्य पथ पर चलने वाले एवं धार्मिक व्यक्तित्व के विद्यार्थी थे। चौदह वर्ष की अल्पायु में अपनी शिक्षा पूर्ण कर वह वापस राज्य में आ गए। इसी समय सम्राट वल्लभसेन एवं माता भगवती देवी के दूसरे पुत्र ने जन्म लिया, जिनका नाम शूरसेन रखा गया।

राजकुमार अग्रसेन स्वयं अपनी विद्या उपलब्धि का वर्णन निम्न प्रकार करते हैं।

उन्होंने अपनी विद्या प्राप्ति के समय गुरुदेव से विनम्रता एवं आज्ञाकारिता का पाठ सीखा। श्रुति कहती है कि विद्या से विनम्रता आती है, विनम्रता से पात्रता और पात्रता से धन और वैभव की प्राप्ति होती है। धन का उपयोग केवल धर्म की राह पर ही लगना चाहिए, इसी से पूर्णता और शांति का आशीर्वाद प्राप्त होता है। राजकुमार

अग्रसेन ने शांति स्थापना एवं विश्व शान्ति हेतु कार्य करने की क्षमता प्रदान होने की शिक्षा प्राप्त की।

गुरु महर्षि तान्डव्य ने उन्हें एक सफल क्षत्रिय सम्राट होने के आवश्यक समस्त पहलुओं की शिक्षा प्रदान की। महर्षि जैमिनी जी के अनुसार, जो उन्होंने सम्राट जन्मजेय को आख्यादित किया, राजकुमार अग्रसेन को समस्त क्षत्रिय वीरों की शिक्षा के साथ विशेषकर निम्न शिक्षाएं विशेषतर प्रदान कीं।

अद्वैत वेदांत: इस शिक्षा का उद्देश्य राजकुमार अग्रसेन को जन्म मृत्यु के व्यूह को समझना और इस से बाहर आने की युक्ति (मोक्ष प्राप्त) समझाना था।

ब्रह्म विद्या: श्रुति के अनुसार राजकुमार अग्रसेन ने 'रहस्य' सहित समस्त वेद विद्या का अध्ययन किया। मुण्डक उपनिषद् में वर्णित छै प्रकार के समाधान, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष विज्ञान में उन्होंने प्रभुता प्राप्त की। 'रहस्य' का यहाँ अर्थ वेदों के गुप्त ज्ञान से है।

भगवत-प्राप्ति: राजकुमार अग्रसेन ने इसे आध्यात्मिक अपरा एवं परा विद्या का ज्ञान बताया है।

अस्त्र विद्या: राजकुमार अग्रसेन गुरुकुल में समस्त अस्त्र विद्याओं के स्वामित्व को प्राप्त हुए।

राजकुमार अग्रसेन स्वयं कहते हैं, "मैंने सद्गुरु महर्षि तान्डव्य जी के द्वारा जाना कि वैदिक सनातन धर्म ही पुरातन सांस्कृतिक एवं सत्य धर्म है। मुझे गुरु-शिष्य परम्परा का एवं इसकी महत्वा का ज्ञान हुआ। गुरुकुल में रहकर मैंने अपना पूर्ण ध्यान गुरुदेव की शिक्षाओं पर केंद्रित किया। शास्त्रों एवं वेदों में वर्णित सभी गुरु-शिष्य परम्परा के सिद्धांतों का मैंने अनुसरण किया। मैंने गुरु आश्रम में सीखा कि एक विद्यार्थी मे यह पांच लक्षण होने चाहिऐ, कौवे की तरह जागरूकता, बगुले की तरह ध्यान, कुत्ते की तरह निंद्रा, अल्पाहारी (आवश्यकतानुसार खाने वाला) एवं गृह-त्यागी (ममता रहित) होना चाहिए।"

काक चेष्टा, बको ध्यानम, स्वान निंद्रा तथैव च |
अल्पाहारी, ग्रह त्यागी, विद्यार्थी पंचा लक्षणम ||

"मैंने सीखा कि जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए गुरुदेव के निर्देश का अक्षरतः पालन करना चाहिए। गुरु का आशीर्वाद और उनके प्रति भक्तिभाव, आज्ञाकारिता, एवं सेवा भाव ही उच्चतम ज्ञान प्राप्ति का साधन है। मैंने समस्त प्रकार के अस्त्रों का ज्ञान गुरु आश्रम में सीखा।"

महर्षि जैमिनी जी के अनुसार, जो उन्होंने सम्राट जन्मेजय जी को बताया, "राजकुमार अग्रसेन ने ऋग वेद में वर्णित सभी प्रकार का अस्त्र ज्ञान जिस से स्वयं की रक्षा की जा सके एवं शत्रु को पराजित किया जा सके, गुरु तान्डव्य से सीखा। इनमें निम्न अस्त्र शिक्षा प्रमुख थी।"

हिरण्यास्त्र: इन्द्र का वज्र ।

सो अस्य वज्रो हरितो या आयसो हरिर्निकामो हरिरागाभस्तयोः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्यूसायका इन्द्रे नि रूपाहरिता मिमिक्षीरे ॥

हिरण्यास्त्र एक स्वर्ण धात्विक अस्त्र है, जो दृढ दांतो से युक्त है। यह इंद्र देव का अस्त्र अपनी उग्रता से शत्रु को नष्ट करने में क्षम है।

मरुत अस्त्र: शक्तिशाली मरुतों का अस्त्र।

वाशीमनता रष्ठिमांतो मनीशिनः सुधन्वाना इशुमंतो निषंगिहाह ।
स्वश्वा स्था सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम ॥

यह अस्त्र बुद्धिमता का प्रतीक है जो शंकु, तीर, तरकस, और धनुष विद्या से संचालित होता है।

विद्या अस्त्र: इन्द्र देव का मेधा अस्त्र।

इन्द्र क्रतुम ना आ भरा पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

यह इन्द्र का अस्त्र रण में सुनियोजिता की बुद्धि प्रदान करता है जिसप्रकार एक पिता अपने पुत्र को ज्ञान देता है।

अग्नि अस्त्र: अग्नि समान अस्त्र।

जातवेदसे सुनवामा सोमं अरातीयतो नि दहाती ।
वेदा सह नह पर्शत अति दुर्गाणि विश्वा सावेव सिंधुम दुरहितात्यग्निः ॥

रण में यह अस्त्र शत्रुओं की बुद्धिमता का हरण कर समस्त कठिनाइओं को दूर करता है। हर प्रकार की सांसारिक, आध्यात्मिक, शारीरिक अथवा सूक्ष्म कठिनाइओं को दूर करने में इसका उपयोग लाभदायी होता है।

ब्रह्मास्त्र: स्वपाण्डित्य अस्त्र।

अहम् मनुर अभावं सूर्याश चाहम कक्षीवां ऋषिर अस्मि विप्रः ।

सूर्य देव का यह अस्त्र उन उन्हीं के समान बलशाली है।

वीर जयस्त्र : शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला वीरों का अस्त्र।

विश्वजिते धनजिते स्वार्जिते सत्राजिते नृजिता उर्वराजिते ।
अश्वजिते गोजिते अबजिते भरेन्द्राय सोमं यजताया हरयतम ॥

यह सर्वश्रेष्ठ अस्त्र स्वयंजित, विश्वजित, धनजित एवं शत्रुजित है।

काली जयस्त्र: द्यूत सफलता प्राप्त अस्त्र।

उता प्रभामतिदिव्या जयाति कृतं यच्छाघनी विचिनोतिकाले ।
यो देवकामो ना धना रुणद्धि समित तम रायास्रजाति स्वधावान ॥

ऐश्वर्य बुद्धिमता से यह अस्त्र द्युत क्रीड़ा में विजयी बनाता है।

इन्द्रास्त्र: इंद्र देव का अस्त्र।

सत्यमित तन ना त्वावाननयो असतीन्द्र देवो ना मर्त्यो ज्यायान ।
वास्तोष पते ध्रुवा स्थूणामसत्रं सोम्यानां द्रप्सो भेत्ता पुराम
शाष्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥

इंद्र देव का अत्यंत विनाशकारी अस्त्र जिसके समान कोई अस्त्र नहीं है।

असुरास्त्र : असुर विनाशकारी अस्त्र।

तप्तं रक्ष उबजातं न्यर्पयतम व्रषणा तमोवृधः |
परा सरणीतामचितो नयोशतं हतम नुदेथाम नि शीषितमत्रिणः (स्वः) ||

असुरों को नष्ट करने वाला महा शक्तिशाली अस्त्र।

प्रामोहना अस्त्र: निंद्रा अस्त्र।

सहस्रशृं गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत |
तेना सहस्येना वयं नि जणां स्वापयामासी ||

गौरादेवी अस्त्र: महादेवी का अत्यन विनाशकारी अस्त्र।

उता सया नाह सरस्वती घोरा हिरण्यावर्तनिह वृत्रघ्नी वष्टि सुष्ठुतिम |

यह महादेवी का दैविक अत्यंत विनाशकारी अस्त्र है।

पशुपता अस्त्र : पशुपति/ रूद्र ब्जग्वान का अस्त्र।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिम पुष्टिवर्धनम |
उर्वारुकमिवबंधनां मृत्योर्मुक्षीया मामृतात ||

त्र्यंबकेश्वर भगवान् की स्तुति से यह अस्त्र मृत्यु पर भी विजय दिलाता है।

शक्ति अस्त्र : इंद्र देव शक्ति अस्त्र।

त्वं शतान्यवा शंबरस्या पुरो जघनताप्रतिनि दसयोः |
अशिक्षो यात्रा शच्या शाकीवो दिवोदासाया सुन्वते
सूतकरे भरद्वाजाय गृणते वसूनी ||

असुरों के अजित नगरों का विनास करने वाला यह अस्त्र अत्यंत शक्तिशाली है ।

चक्र अस्त्र :

अवर्तयत सूर्यो ना चक्रम भिनद वलमिन्द्रो अंगिरसवां |

भगवान् सूर्यदेव का अत्यंत शक्तिशाली चक्र अस्त्र जो शत्रुओं का तत्काल विनास कर देता है।

अश्विनी शक्ति अस्त्र : सिद्धि प्राप्त कारक अस्त्र।

प्राचीमु दीवाश्विना धियम मे अम्रधराम सातये कृतं वसूयूम |
विश्वा आविष्ठं वाजा आ पुरंधीस्ता नाह शक्तं शचीपति शचिभिः ||

रणक्षेत्र में वीरता एवं ऊर्जा प्रदान करने वाला अस्त्र।

कवच मंत्र :

बृहस्पतिरणः परी पातु पश्चादतोत्तरसमादधारादागायोह |

बृहस्पति देव का भय और कठिनाइओं से बचाने वाला अस्त्र।

चौदह वर्ष की अवस्था में शिक्षा प्राप्त कर वापस आने पर सम्राट वल्लभसेन ने उन्हें युवराज घोषित कर दिया।

प्रतापनगर राज्य के युवराज के रूप में राजकुमार अग्रसेन ने सम्राट वल्लभसेन के राज्य कार्य में पूर्ण रूप से सहयोग दिया। उन्होंने देश प्रेम, अखंड भारत की एकता, सभी समाजों के समुदाय का आपस में मैत्री भाव जिससे समाज में स्थिरता आए, इस तरह के महान कार्यों को करना प्रारम्भ किया।

उन्हें प्रतापनगर राज्य की सेना का अध्यक्ष भी नियुक्त किया गया उनके अस्त्र शस्त्रों का विशाल ज्ञान जो उन्होंने महर्षि तान्डव्य के गुरुकुल में सीखा, बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ। उन्होंने सेना का आधुनीकरण कर नए नए अस्त्र और शस्त्रों का समावेशन किया।

जब युवराज १६ वर्ष की आयु के हुए तब पांडवों और कौरवों के मध्य हस्तिनापुर के सिंहासन के लिए महाभारत युद्ध छिड़ गया। जैसा उल्लेख किया जा चुका है कि सम्राट वल्लभसेन महाराज युधिष्ठिर (पांडवों) के अत्यंत निकटतम मित्र थे, अतः महाराज युधिष्ठिर ने उन्हें अपनी ओर से युद्ध में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। सम्राट वल्लभसेन ने इस निमंत्रण को स्वीकार किया, तथा युवराज अग्रसेन, अपनी समस्त सेना एवं सेनापति केसी के साथ युद्ध प्रांगण में जाने की तैयारी प्रारम्भ कर दी।

सम्राट वल्लभसेन युवराज अग्रसेन को अपने साथ महाभारत युद्ध में ले जाने को तो अवश्य तैयार हो गए परन्तु उन्हें युद्ध में भाग लेने की अनुमति नहीं देना चाहते थे।

सत्यधर्माभिरक्षार्थमं पुत्र गच्चा ममानया |

सम्राट वल्लभसेन ने कहा, "प्रिय पुत्र तुम्हारी आयु केवल १६ वर्ष की है। इस अल्प आयु में युद्ध की अनुमति देना धर्म और शास्त्रों के विरुद्ध है।"

माता भगवती ने पुत्र की युद्ध में भाग लेने की तीव्र इच्छा देखते हुए उन्हें हृदय से लगाया और इस धर्म युद्ध में भाग लेने की अनुमति देते हुए कहा।

सत्यार्थे धर्मकामार्थे त्वयासम्याग्रा सपुत्रिका |

"हे पुत्र धर्म एवं सत्य कार्य के लिए होने वाले इस महायुद्ध महाभारत में तुम अवश्य सम्मलित हो, और विजयी हो कर लौटो।"

तब युवराज अग्रसेन अपने पिता सम्राट वल्लभसेन एवं अपनी सेना के साथ महाभारत रणक्षेत्र में गए। जैसा इतिहास में वर्णित है उन्होंने पांडव अर्जुन पुत्र अभिमन्यु के साथ साथ प्रत्येक दिन भीषण युद्ध किया।

युद्ध के दसवें दिन उनके पिताश्री सम्राट वल्लभसेन महान भीष्म पितामह द्वारा चलाए वाणों से वीरगति को प्राप्त हुए। पिता के वीरगति प्राप्त होने के पश्चात भी उन्होंने आत्मनियंत्रण रखा, और पूरे अठारह दिनों तक कौशलता से युद्ध करते रहे।

महाभारत युद्ध का दसवां दिन

महाभारत युद्ध के दसवें दिन पांडवों ने शिखंडी को एक सेना की टुकड़ी का अध्यक्ष बनाकर भीष्म पितामह के साथ लड़ने के लिए तैयार किया। उनकी रक्षा के लिए अर्जुन, भीम और वल्लभसेन को नियुक्त किया। इस सेना की टुकड़ी के पीछे द्रौपदी के पांचो पुत्र, अभिमन्यु और अग्रसेन थे। इनको सहयोग देने वाले दुसरे अति महारथी जैसे सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद एवं कैकेया बंधु इत्यादि थे।

कौरवों की ओर से सेनापति पितामह भीष्म सेना का नेतृत्व कर रहे थे। सेनापति भीष्म की रक्षा के लिए धृतराष्ट्र के पुत्र, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, भगदत्त, कृपा, कृतवर्मन, सुदक्षिणा, जयत्सेना, शकुनि, बृहद्वला आदि महारथी थे। इनके पीछे अगणित योद्धा युद्ध की इच्छा लिए शोभायमान थे।

दोनों कौरवों और पांडवों की सेना अनेक प्रकार के अस्त्रों से युक्त एक दूसरे से युद्ध करने के लिए आतुर थीं। तब शिखंडी ने युद्ध प्रारम्भ करते हुए भीष्म पितामह पर तीन दैविक बाण चलाये जिन्होंने भीष्म पितामह के वक्ष पर आघात किया। भीष्म पितामह ने शिखंडी के बाण काटे अवश्य, पर उन पर प्रहार नहीं किया। शिखंडी के सेना समूह का विनाश करते हुए भीष्म पितामह आगे बढ़े। भीष्म पितामह ने शिखंडी से युद्ध करना स्वीकार नहीं किया। शिखंडी को सम्बोद्धित करते हुए भीष्म पितामह बोले, "हे द्रुपद पुत्र शिखंडी, तुम मुझ पर चाहे कितना भी आघात करो, मैं तुम से कदापि नहीं लडूंगा। तुम जन्म से नारी हो। लिंग परिवर्तन होने पर भी मेरे नारी से न लड़ने के सिद्धांत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।"

तब शिखंडी ने उत्तर देते हुए कहा, "हे महान भीष्म, मैं जानता हूँ कि आपने भगवान् परशुराम जैसे अत्यंत शक्तिशाली वीर को परास्त भी किया। मेरा इस पराक्रम की श्रेणी में कोई अस्तित्व नहीं है, फिर भी मैं आपसे युद्ध करूंगा और आपको वीरगति को प्राप्त कराऊंगा। आप मुझ पर प्रहार करें अथवा नहीं, इससे मुझे कोई अंतर नहीं पड़ता। आप यम लोक जाने के लिए तैयार हो जाइए।"

शिखंडी के शब्दों पर ध्यान न देते हुए भीष्म पितामह ने सोमक एवं श्रृंजय की सेना को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। अपनी समस्त ऊर्जा के साथ युद्ध में कौशल दिखाते हुए उन्होंने दस सहस्त्र हाथियों एवं दस सहस्त्र घुड़सवारों को यमलोक पहुंचा दिया। इसके साथ ही महान भीष्म ने दो लाख सैनिकों भी वीरगति प्रदान की। यद्यपि पितामह का संहार अत्यंत भयावक था, परन्तु इसका पांडवों पर प्रभाव निम्न ही था। पांडवों की

सेना के वीर अपने अपने दिव्य अस्त्रों के साथ भीष्म पितामह को वीरगति प्राप्त कराने की इच्छा से उनसे युद्ध करने लगे।

भीष्म पितामह की शक्ति का अनुभव कर पाण्डु पुत्र अर्जुन सम्राट वल्लभसेन से बोले, "सम्राट, आप भीष्म पितामह से निडर होकर युद्ध कीजिये। मैं आपकी रक्षा में आपके पीछे खड़ा हूँ।"

अर्जुन की विनती पर सम्राट वल्लभसेन भीष्म पितामह से युद्ध करने लगे। उनका साथ धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु एवं अग्रसेन ने दिया।

महान भीष्म इस समय सोमक एवं श्रृंजय की सेना का संहार कर रहे थे। इधर सम्राट वल्लभसेन और पाण्डु पुत्र अर्जुन भी सहस्त्रों की संख्या में शत्रुओं के सैनिकों का संहार कर रहे थे। यह युद्ध इतना भयानक था कि यह कह पाना असंभव था कि किसका पलड़ा भारी है। महान भीष्म वल्लभसेन और पांडव सेना का प्रखरता से विनाश कर रहे थे।

इसी समय महाराज युधिष्ठर का रथ पितामह भीष्म के समक्ष आया। युधिष्ठर को अपने समीप देख पितामह भीष्म बोले, "हे युधिष्ठिर, मेरे शब्द और मेरी विनती को ध्यान से सुनो। अब तक मैंने दस दिन तुम्हारी विशाल सेना का संहार करने में अपनी ऊर्जा का प्रयोग किया है। हे भारत, अब इस शरीर को जीवित रखने की मेरी इच्छा समाप्त हो गई है। मेरी इच्छा की पूर्ति करो और शीघ्र अति शीघ्र मेरे वीरगति प्राप्त करने का उपाय करो। शिखंडी को मेरे समक्ष रख, पार्थ के वाणों द्वारा मुझे स्वर्गलोक का पथ दर्शित कराओ।"

पितामह भीष्म की इच्छा जान, युधिष्ठर ने धृष्टद्युम्न द्वारा नेतृत्व वाली श्रृंजय सेना को पितामह पर आक्रमण करने का निर्देश दिया। अर्जुन और वल्लभसेन भी अपने तीखे वाणों से भीष्म पितामह पर वार करने लगे। इस पर भी महान भीष्म ने अल्प समय में ही चौदह सहस्त्र रथों का विनाश कर दिया। पितामह भीष्म के साथ इस समय दुर्योधन का रथ था। दुर्योधन के आदेश पर कौरवों की सेना ने अर्जुन और वल्लभसेन की सेना पर आक्रमण कर दिया। इस विकराल युद्ध को देख अर्जुन ने अपने दैविक अस्त्रों से कौरव सेना को अत्यंत क्षति पहुंचाई। अर्जुन के दैविक अस्त्रों के संहार से कुपित महान भीष्म ने भी दैविक अस्त्रों को आमंत्रित कर अर्जुन की ओर रुख किया। उसी समय शिखंडी महान भीष्म के समक्ष आ गए, अतः पितामह ने उन दैविक अस्त्रों को वापस बुला लिया।

तब पितामह ने अपना ध्यान सोमक, श्रृंजय एवं वल्लभसेन की सेना के संहार में लगा दिया। उन्होंने अपने बल पर ही दस सहस्त्र हाथियों एवं पांचाल और मत्स्य की सेना के सात महारथियों को यमलोक पहुंचा दिया। इसके साथ ही पांडव सेना के दस सहस्त्र घुड़सवारों एवं पांच सहस्त्र सैनिकों को वीरगति प्राप्त कराई। पांडव सेना का संहार करते हुए इस समय उन्होंने विराट के भाई सहतानिका को यमलोक पहुंचा दिया। जो भी महारथी पार्थ का सहयोग करता, महान भीष्म उसे ही वीरगति को प्राप्त करा देते। इस दसवें दिन के महाभारत युद्ध में पितामह भीष्म अपनी सर्वश्रेष्ठ ऊर्जा में थे। कोई भी महारथी उनके सामने टिकने में असमर्थ था। पांचाल नरेश द्रुपद, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, विराट, अभिमन्यु, अग्रसेन, सात्यकि, द्रौपदी के पांचो पुत्र, घटोत्कच, भीम एवं कुन्तिभोज आदि महारथी उनके क्रोध की अग्नि में झुलस रहे थे। तब उनकी रक्षा हेतु सम्राट वल्लभसेन आए। उन्होंने सभी पांडव महारथियों का उत्साह बढ़ाया, तथा देखते देखते ही सैकड़ों कौरव सैनिकों का संहार कर दिया। पांडवों के कई अधिरथियों एवं महारथियों ने एक साथ अपने अपने तीखे वाणों से पितामह पर आक्रमण किया। शिखंडी को महान भीष्म के समक्ष रख वह अति आवेग से पितामह पर आक्रमण कर रहे थे। स्वयं शिखंडी भी अपने वारों से भीष्म पितामह को घायल करने का प्रयास कर रहे थे। भीष्म पितामह इन सब से बेपरवाह अपने पराक्रम से पांडव सेना का विनाश करते चले गए। तब सम्राट वल्लभसेन ने अपनी पूर्ण शक्ति से महान भीष्म पर सीधा आक्रमण किया। प्रत्युत्तर में भीष्म पितामह ने भाले से सम्राट वल्लभसेन पर वार किया। भाले की तीव्र चोट से सम्राट वल्लभसेन को गहरी चोट लगी एवं उनको मूर्छा आ गई।

तभी अन्य पांडव वीर अपनी अपनी पूरी शक्ति से भीष्म पितामह पर वार करने लगे। सम्राट वल्लभसेन की जब मूर्छा जागी तो वह स्वयं अर्जुन के साथ खड़े हो भीष्म पितामह से फिर से पूर्ण ऊर्जा के साथ उनसे युद्ध करने लगे। उन्होंने पितामह के शरीर के हर अंग पर वार किया, लेकिन इस से पितामह किंचित भी विचलित नहीं हुए। उनके हर वार का यथोचित उत्तर देते हुए वह पांडव सेना के विनाश में लगे रहे। तब शिखंडी ने अपना रथ पितामह के सम्मुख किया और अर्जुन के साथ अपने वाणों से महान भीष्म को घायल करने का प्रयास करने लगे। अर्जुन बारम्बार उनपर वाणों का प्रहार करते रहे और पितामह उन वाणों को काटते रहे। अपने जीने की इच्छा पहले से ही समाप्त किये पितामह भीष्म तब पास में रथी दुःशासन से बोले, "देखो, कैसे अर्जुन मेरे हर वाण का उत्तर देकर मेरे सहस्त्रों वाणों को गाजर मूली की तरह काट रहा है। मैं देवों, यक्षों और असुरों के वाणों से भी कभी प्रभावित नहीं हुआ, लेकिन यह अर्जुन के वाण मेरे शरीर को छिन्न भिन्न कर रहे हैं। शिखंडी के वाणों का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं है, लेकिन इन अर्जुन के वाणों का तो मेरे पास भी कोई

विकल्प नहीं है। यह वाण विष की तरह मेरे शरीर में प्रवेश करते चले जा रहे हैं । गोविन्द के अतिरिक्त मुझे इतना दर्द कोई नहीं दे सकता।"

इतना कहकर पितामह ने एक भाले से अर्जुन पर प्रहार किया। पार्थ ने उस भाले को वहीं पर काट दिया। तब पितामह ने तलवार से अर्जुन पर प्रहार किया लेकिन कुन्तीपुत्र अर्जुन ने उस तलवार को भी काट दिया। इस कुन्तीपुत्र और गंगापुत्र के घमासान युद्ध को देखने देवता भी अपने अपने वाहनों पर आकाश में सुशोभित थे।

तब महाराज युधिष्ठिर सम्राट वल्लभसेन से बोले, "कृपया आप गंगापुत्र की ओर रुख करें। तनिक भी डर मन में ना रक्खें। मैं स्वयं अपने सेना की टुकड़ी के साथ आपकी रक्षा की लिए तैनात हूँ। इन शब्दों को सुनकर सम्राट वल्लभसेन अपनी सेना के साथ पितामह पर अति तीव्रता से आक्रमण करने लगे। सहस्रों दैविक वाणों से अर्जुन ने भी पितामह पर आक्रमण किया। कोई ऐसा अंगुल स्थान नहीं होगा जहाँ पितामह का शरीर छिद्रित ना हो गया हो। तभी पितामह के वाणों से वल्लभसेन सांघातिक रूप से घायल हो गए।

यह देख पितामह ने कुछ क्षणों के लिए युद्ध रोक दिया ।अपने नैनों में अश्रु भर वीर वल्लभसेन को वीरगति प्राप्त होने पर श्रद्धांजलि अर्पित की।

इस मिश्रित दुःख एवं संहार की स्थितिभान से पितामह भीष्म वीर अर्जुन के वाणों से घायल अपने रथ से गिर पड़े। जब वह रथ से गिरे उस समय उनका सिर पूर्व दिशा में था। यह जानते हुए कि सूर्य देव अभी अशुभ दिशा में हैं, उन्होंने अपने प्राण नहीं त्यागे। उनके शरीर को वाणों ने बुरी तरह से भेद रखा था अतः उनका शरीर धरती पर नहीं लगा। इस समय पितामह का स्वरुप दैविक दृष्टिगोचर हो रहा था। उसी समय माता गंगा ने उनकी मृत्यु का समय निकट जान सप्त ऋषियों को स्वान स्वरुप में उनके पास भेजा, जिन्होंने उनकी परिक्रमा लेते हुए माँ का सन्देश सुनाया कि जब तक सूर्य उत्तरायण न हो जाएँ, तब तक वह अपने प्राण ना त्यागें। तब भीष्म पितामह ने सप्तऋषियों को आदर सहित प्रणाम कर कहा," माता के शब्दों का सम्मान करते हुए मैं तब तक प्राण त्याग नहीं करूंगा जब तक सूर्य देव उत्तरायण ना हो जाएँ।" भीष्म पितामह के यह शब्द सुन सप्तऋषि स्वर्ग लोक वापस लौट गए।

जब पितामह भीष्म धराशायी हो गए तब दोनों ही दलों, पांडवों एवं कौरवों, ने उस दिन के युद्ध की समाप्ति की घोषणा कर दी। पांडवों एवं श्रृंजय सेना टुकड़ियों में प्रसन्नता की लहर जाग गई और उन्होंने विजयी घोष का उन्माद किया। कौरव और उनकी सेना गहन दुःख में डूब गई। दुर्योधन और कृपाचार्य के नेत्र अश्रूयों से भर गए।

उसी समय दुःशासन द्रोणाचार्य के समीप गए जो कुछ दूर पर पांडवों की दूसरी टुकड़ी से युद्ध कर रहे थे। उन्हें भीष्म पितामह के धराशायी होने का सन्देश दिया। यह सुन द्रोणाचार्य मूर्छित हो गए। थोड़े समय बाद जब उनकी मूर्छा जागी तो उन्होंने भी उस दिन के युद्ध की समाप्ति की घोषणा कर दी। अपने अपने अस्त्रों को त्याग दोनों ही कौरव एवं पांडव वीर धराशायी पितामह भीष्म के समीप पहुंचे। पितामह को प्रणाम अर्पित करते हुए दोनों पक्ष करबद्ध उनके समीप खड़े हो गए। आहत पितामह तब इस प्रकार बोले, "हे पांडव एवं कौरव वीरो, मैं ह्रदय से आपका स्वागत करता हूँ। मैं मृत्यु से पूर्व तुम दोनों पक्ष को इस तरह साथ देख धन्य हुआ।"

महान भीष्म का सिर एक ओर लटक रहा था जिससे उन्हें बोलने में अत्यंत असुविधा हो रही थी। दुर्योधन ने अपने सैनिकों को एक तकिया लाने को कहा। तुरंत दसों आरामदायक तकिये पितामह को अर्पित किये गए, लेकिन पितामह बोले, "ओ सम्राटो, यह एक वीर का तकिया नहीं।"

तब अर्जुन की ओर मुख कर भीष्म पितामह बोले, "हे पार्थ मुझे वीरों के अनुयुक्त तकिया प्रदान करो।" तब नेत्रों में अश्रु भरे अर्जुन ने पितामह के सिर के नीचे वाणों का तकिया तैयार किया। तब पितामह प्रसन्नता से बोले,"हे पार्थ तुमने वीरों के उपयुक्त तकिया मुझे दिया। रणक्षेत्र में एक योद्धा को इसी प्रकार शयन करना चाहिए। मैं इसी बिस्तर पर शयन करूंगा जब तक कि सूर्य देव उत्तरायण न हो जाएँ, और मेरे मोक्ष प्राप्त करने का समय न आ जाए।"

इधर दूसरी ओर पांडव शिविर में अपने पिता वल्लभसेन के वीरगति प्राप्त होने के समाचार से युवराज अग्रसेन अत्यन आहत हुए। भगवान् कृष्ण ने तब उन्हें गीता ज्ञान देते हुए ढांढस दिया। भगवान् कृष्ण बोले, 'हे पुत्र अग्रसेन, महाराज वल्लभसेन की वीरता और उनका वीरगति को प्राप्त होना एक देश एवं धर्म भक्त योद्धा का बलिदान होना है। यह पृथ्वी उनके इस बलिदान को सदैव स्मरण रखेगी। उनका बलिदान किसी शोक का कारण नहीं है।"

महाभारत युद्ध इसके पश्चात आठ दिन और चला। युवराज अग्रसेन अपने पिता की मृत्यु पर आहत होने के पश्चात भी प्रत्येक दिवस बड़ी बहादुरी से इस धर्म युद्ध में लड़ते रहे।

महाभारत युद्ध की समाप्ति पर पांडवों की विजय हुई और धर्मराज युधिष्ठिर हस्तिनापुर के सिंहासन पर आसीन हुए। सिंहासन पर आरूढ़ होने के तुरंत बाद उन्होंने युवराज अग्रसेन का विशेष अभिवादन किया और कहा:

कुमारस्याग्रसेनस्य युद्धेपश्यमम महाबदलाम
पितुर्वेदना सन्ताप्तोप्यःअंश्चा शतशोप्यरीन |

महाराज युधिष्ठिर बोले, "मैंने महाभारत युद्ध में अग्रसेन का रण कौशल पराक्रम भली भांति देखा है। मैंने इनका बल, लड़ने की युक्ति एवं घोर युद्ध में नैतिकता का व्यवहार देखा है। पिता की मृत्यु का शोक होते हुए भी बिना बदले की भावना से शस्त्रविहीन दया की याचना करते हुए वीरों को क्षमादान देते हुए मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है। अग्रसेन यथार्थ में एक सच्चे धर्मवीर हैं।"

कृपाविष्टेन मनसा युद्धक्षेत्रागतोप्यासौ |
अग्रसेणास्त्वयामं धन्यो येनात्मविजयः कृता ||

भगवान् कृष्ण की शुभ कामनाओं एवं आशीर्वाद के साथ तब पांडवों ने युवा युवराज अग्रसेन को अपने साम्राज्य में जाने के लिए धनधान्य से युक्त कर एवं उनकी अत्यंत प्रशंसा कर आज्ञा दी। तब भगवान् कृष्ण ने महर्षि गर्ग आचार्य से उनकी हर प्रकार से भौतिक एवं आध्यात्मिक मार्ग दर्शन करने की प्रार्थना की

महर्षि गर्ग बोले,"अग्रसेन मुझे अति प्रिय है । इनके पितामह को मैंने अपने शिष्य के रूप में स्वीकार किया था तथा उनका हर मोड़ पर मार्ग दर्शन किया था। अवश्य ही मैं इनका भौतिक एवं आध्यात्मिक मार्ग दर्शन करता रहूँगा। यह इनका अपने साम्राज्य वापस जाने का समय है। अभाग्यवश इन्हें अपने साम्राज्य वापस पहुंचने पर अत्यंत कठिनाइओं का सामना करना पडेगा। यह एक क्षत्रिय हैं। एक वीर क्षत्रिय की भांति ये उन सब परेशानीओं का सामना करें। मैं इन्हें आशीर्वाद देता हूँ कि अंत में इन्हें निराशा नहीं होगी और यह सभी कठिनायों से अवश्य ही बाहर आएंगे। मैं अपने आश्रम में इनके आने एवं इन्हें आगे के मार्गदर्शन देने की प्रतीक्षा करूंगा।"

साम्राज्य वापसी, काराबंधन एवं पलायन

महाभारत युद्ध में पांडवों के पक्ष में भाग लेने जब सम्राट वल्लभसेन अपने पुत्र राजकुमार अग्रसेन, अपनी सेना एवं वीर सेनापति केसी के साथ कुरुक्षेत्र गए तब अपने राज्य का भार उन्होंने अपने छोटे भाई कुन्द्सेन् को सौंपा। कुन्द्सेन् और उसका बेटा दोनों ही विलासी, लंपट, कामुक और व्यभिचारी थे। जब कुन्द्सेन् को समाचार मिला कि सम्राट वल्लभसेन एवं सेनापति केसी वीरगति को प्राप्त हुए हैं तो उसने स्वयं को प्रतापगढ़ का सम्राट घोषित कर दिया। वह प्रजा एवं सत्यवान मंत्रियों की परवाह ना करते हुए अपनी स्वार्थपूर्ति में लग गया। जो भी उसका विरोध करता वह उसको मृत्यु दंड ही देता। इस तरह सम्राट वल्लभसेन एवं युवराज अग्रसेन के समर्थकों को या तो उसने मरवा दिया अथवा बंदी ना लिया।

उसने माता साम्राज्ञी भगवती देवी को भी बंदी बना लिया। जब युवराज अग्रसेन महाभारत युद्ध में विजय प्राप्त कर अपने राज्य प्रतापनगर वापस आए तो कुन्द्सेन् द्वारा नवीन नियुक्त सेनापति ने उन्हें भी बंदी बना लिया।

इतिहास में ऐसा वर्णित है कि युवराज अग्रसेन दैविक अस्त्रों के ज्ञानी होने के कारण अपनी रक्षा करने में पूर्ण सक्षम थे, लेकिन माता के ध्यान ने उन्हें ऐसा करने से वंचित किया। स्वयं को बंदी बनवा लेना उन्होंने स्वीकार किया।

दोनों माता और पुत्र के लिए कारागार में यह अत्यंत कठिन समय था। अभाग्यवश, माता भगवती देवी, जो महाभारत युद्ध में वीरगति प्राप्त हुए पति के शोक से अभी मुक्त भी नहीं हो पाईं थीं, को इस दुविधा ने कारागार में गंभीर रूप से बीमार कर दिया। राज्य वैद्य की प्रार्थना पर, तथा माता भगवती को कुछ हो गया तो राज्य में उपद्रव की आशंका के कारण कुन्द्सेन् ने उनके स्वास्थ्य लाभ के लिए वैद्यशाला में स्थान्तरित करने की आज्ञा दे दी। साथ में युवराज अग्रसेन को भी उनकी देखभाल के लिए माँ के साथ रहने की आज्ञा प्रदान कर दी। उसने वैद्यशाला को अपने विश्वस्त बलशाली दस योद्धाओं को सुरक्षा हेतु नियुक्त किया। उसे आशंका थी कि कहीं माँ पुत्र पलायन ना कर लें।

तब सम्राट वल्लभसेन के एक विश्वासपात्र सेना अधिकारी श्री सुमित जी उनके पलायन एवं बचाव के लिए सामने आए।

महर्षि जैमिनी चक्रवर्ती सम्राट जन्मेजय जी को वैद्यशाला के उस कमरे का वर्णन करते हुए बताते हैं कि जहाँ माता भगवती देवी एवं पुत्र अग्रसेन को क्रूर चाचा कुन्दसेन् के आदेश पर रखा गया था, उस छोटे से कमरे में प्रकाश आने तक के लिए कोई छोटी सी खिड़की तक नहीं थी। शीतकाल प्रारम्भ होने पर इस कमरे के पट खुले रखने का व्यवस्था अवश्य कर दी गई थी ताकि समीप के एक विशाल कक्ष में निरंतर जलती हुई काष्ठ अग्नि से इस छोटे से कमरे को गरम रखा जा सके। इस व्यवस्था ने महारानी भगवती देवी एवं राजकुमार अग्रसेन को सर्दी के कोप से बचाया रखा।

सम्राट वल्लभसेन के अति निकटतम एवं विश्वासपात्र सेना अधिकारी सुमित जी ने माता भगवती एवं राजकुमार अग्रसेन के पलायन की योजना तैयार की। राज्य के एक प्रतिष्ठित कुन्दसेन् के मंत्री जो अभी भी हृदय से सम्राट वल्लभसेन के हितैषी थे, को इस योजना में सम्मिलित किया। उन्होंने पहले एक रथ का प्रबन्ध किया। यह मंत्री अपनी पत्नी सहित प्रतिदिन इसी रथ में अपराह्न समय पर वैद्यशाला आने लगे। इनका प्रत्यक्ष कारण तो यह जानना था कि दोनों, माता भगवती एवं राजकुमार अग्रसेन, की सुरक्षा का प्रबन्ध तो उचित है ताकि ये दोनों पलायन न कर सकें। अप्रत्यक्षतः यह पलायन की योजना में सम्मिलित थे। वह पंद्रह बीस मिनट वैद्यशाला में रुकते, सुरक्षा अधिकारियों से बातें करते और प्रबन्ध से संतुष्ट होने का अभिनय करते हुए चले जाते। इसी प्रकार कई हफ्ते बीत गए। अब सभी सुरक्षा पर तैनात सैनिक इनकी प्रतिदिन की भेंट यात्रा के अभ्यस्त हो गए और उन्होंने इस पर ध्यान देना भी छोड़ दिया।

सुमित जी के निर्देश पर कई अन्य सम्राट वल्लभसेन के स्वामिभक्त अधिकारियों ने वैद्यशाला के आस पास के कई गृहों को अपने अधिकार में ले लिया। इन गृहस्वामियों को सुरक्षा के नाम पर वहां से अस्थायी रूप से हटा कर दुसरे स्थान पर भेज दिया। वैद्यशाला के सबसे समीप गृह में एक संगीतकार अधिकारी का निवास बनाया। उनका कार्य था कि वह पलायन योजना को कार्यान्वित होते देखते रहें और अगर सब कुछ योजना के अनुसार चल रहा है तो मधुर ध्वनि में संगीत वाद्यन करते रहें। अगर किसी प्रकार योजना में रुकावट आए तो वह संगीत वाद्यन बंद कर दें, जो संकट का संकेत होगा।

एक अपराह्न को पलायन योजना को कार्यान्वित किया गया सर्वप्रथम सुमित जी और उनके सहयोगियों ने आस पास के सभी रथों को एक विवाह समारोह में सम्मिलित होने के अपदेश पर किराए पर ले लिया। इसका उद्देश्य था कि अगर सुरक्षा सैनिकों को इस पलायन योजना की पलायन पश्चात जानकारी भी हो जाय तो उन्हें पीछा करने के लिए तीव्र गति से चलने वाला कोई वाहन न मिल सके। अपने यथा समय पर एक रथ मंत्री महोदय एवं उनकी पत्नी समेत वैद्यशाला पहुंचा। वह अपने साथ नए

राजसिक वस्त्र भी लेकर आए। वैद्यशाला पहुंचते ही, शीघ्र वह माता भगवती एवं राजकुमार अग्रसेन के उस कमरे में गए जहां दोनों, मात-पुत्र, को बंदी बना कर रखा हुआ था। उन्हें शीघ्र अति शीघ्र वस्त्र बदलने के लिए कहा।

उसी समय श्री सुमित जी का एक विश्वासपात्र सैनिक किसान की वेशभूषा में वैद्यशाला के सामने मार्ग के चौराहे पर बेर लेकर बैठ गया। वह अपने थैले से बेर निकालकर खाने लगा। योजना थी कि अगर बेर की गुठलियां वह दाहिनी ओर फेंके तो पलायन कार्य सफलता पूर्वक चल रहा है और सुरक्षा सैनिकों को निःशस्त्र किया जा चुका है। इसके विपरीत अगर वह गुठलियों को बाएं ओर फेंके तो वह रुकावट और संकट का प्रतीक होगा।

उसी समय एक अन्य विश्वासपात्र सैनिक वैद्यशाला में एक अति उच्च अधिकारी की वेशभूषा में पहुंचा और वहां तैनात सुरक्षा सैनिकों से किसी व्यक्ति विशेष जो उसी क्षेत्र में रहते थे, उनका पता पूछने लगा। उसने सैनिकों से अनुरोध किया कि वह उसके साथ चलकर इन व्यक्ति विशेष के गृह तक पहुंचा दें। उच्च अधिकारी की वेशभूषा से प्रभावित हो और उन्हें कुन्द्सेन् का कोई समीपी अधिकारी समझते हुए वह इनकी प्रार्थना को अस्वीकार नहीं कर सके, और दो सैनिक उनके साथ इस व्यक्ति विशेष का गृह बताने चल दिए। थोड़ी दूर पहुंचते ही इस अधिकारी ने उन दोनों सैनिकों पर अचानक हमला बोल दिया और उन की हत्या कर दी।

उसी समय सुमित जी के दुसरे विश्वासपात्र सैनिक ने शराबी का अभिनय करते हुए वैद्यशाला के अस्तबल में प्रवेश किया। उसने वहां के सभी अश्वों को चारा में मिलाकर मादक पदार्थ दे दिया। इस औषधि से सभी अश्वों को निद्रा आ गई। इसी समय उसने चिल्लाना प्रारम्भ भी कर दिया, 'देखो, घोड़ों को क्या हो रहा है?'

उसकी ऊंची आवाज़ सुन दो सुरक्षा सैनिक अस्तबल की ओर दौड़े। सुरक्षित स्थान पर छिपे इस व्यक्ति ने उन दोनों सैनिकों पर अचानक हमला कर दिया और दोनों की हत्या कर दी।

यह सब घटनाक्रम वैद्यशाला के बाहर हो रहे थे। वैद्यशाला के अंदर क्षद्मवेश में मंत्री महोदय एवं उनकी पत्नी ने अब उन बचे हुए छै सैनिकों पर अचानक हमला बोल दिया। उसी समय राजकुमार अग्रसेन एवं द्वार से सुमित जी ने उनका साथ दिया तथा सबको मृत्यु के घाट उतार दिया।

माता भगवती देवी को लेकर तब राजकुमार अग्रसेन तुरंत वैद्यशाला से बाहर आ प्रतीक्षा कर रहे रथ में सवार हो गए। उसी समय संगीत वाद्यन होने लगा जो पलायन की सफलता का प्रतीक था।

माता भगवती देवी एवं राजकुमार अग्रसेन को लेकर सुमित जी तीव्र गति से रथ को हांकते हुए महर्षि गर्ग के आश्रम की ओर चल दिए।

शीघ्र ही रथ इष्टवती नदी के किनारे स्थित महर्षि गर्ग के आश्रम में पहुंच गया। इस प्रकार माता भगवती और राजकुमार अग्रसेन का अत्याचारी कुन्दसेन् के कारागार से पलायन संभव हो सका। महर्षि ने उनका हृदय से स्वागत किया और उनको आश्वासन दिया कि शीघ्र ही वह प्रतापनगर के सिंहासन पर बैठेंगे। राजकुमार अग्रसेन ने महर्षि का पादपूजन किया और अपना आभार प्रगट किया।

ॐ अखण्डमण्डलाकरम व्याप्तं येन चराचरम ।
तत्पदं दर्शितं ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

महालक्ष्मी स्तुति एवं नवीन राज्य स्थापना

माता भगवती का यहाँ आश्रम के वैद्य ने उपचार किया। वह शीघ्र ही स्वस्थ हो गयीं। तब महर्षि गर्ग मुनि ने उन्हें माता महालक्ष्मी की आराधना करने का निर्देश दिया।

तव वंशे मही सर्वापूरिता च भविष्यति,
तव वंशे जातिपर्णे कुल नेता भविष्यति ।
अद्यारम्य कुले तव नाम्नां प्रसिद्धयति,
अग्रवंशिमां हि प्रजारू प्रसिद्धारू भुवनत्रये ।।
भुजा प्रसादं तव वसेत नान्यस्मे प्रतिदापयेत,
येन स सफला सिद्धिभूयति तव युगे युगे ।
मम पूजा कुले यस्य सोग्रवंशो भविष्यति ।।
(अग्रवंश वैश्यानुकीर्तनम्)

महर्षि गर्ग ने उन्हें महालक्ष्मी की आराधना के लिए 'श्री सूक्त' की दीक्षा दी। श्री सूक्त महालक्ष्मी को अर्पित एक आराधना है जिसकी स्तुति धन, धान्य एवं जनन-क्षमता प्रदान करती है। महर्षि गर्ग कहते हैं कि इस सूक्त के अतिरिक्त कोई अन्य श्लोक माँ को प्रसन्न करने के लिए अधिक प्रभावशाली नहीं है। महर्षि की आज्ञानुसार राजकुमार अग्रसेन ने उनके द्वारा निर्देशित स्थान पर इस सूक्त पर ध्यान केंद्रित किया तथा उसी स्थान पर कई वर्षों तक तपस्या की।

अथ श्री सूक्तं

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ।। (१)

हे जातवेदा अग्निदेव, आप मुझे सुवर्ण के समान पीतवर्ण वाली, किंचित हरितवर्ण वाली तथा हरिणी रूपधारिणी सुवर्न मिश्रित रजत की माला धारण करने वाली, चाँदी के समान धवल पुष्पों की माला धारण करने वाली, चंद्रमा के सद्रश प्रकाशमान तथा चंद्रमा की तरह संसार को प्रसन्न करने वाली, चंचला के सामान रूपवाली हिरण्मय ही जिसका शरीर है, ऐसे गुणों से युक्त लक्ष्मी को मेरे लिए बुलाओ।

ॐ तां म आ व ह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ।। (२)

हे जातवेदा अग्निदेव, आप उन जगत प्रसिद्ध लक्ष्मी जी को मेरे लिए बुलाओ जिनके आवाहन करने पर मै सुवर्ण, गौ, अश्व और पुत्र पौत्रदि को प्राप्त करूँ।

ॐ अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनाद्प्रमोदिनीम् ।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ।। (३)

जिस देवी के आगे और मध्य में रथ है अथवा जिसके सम्मुख घोड़े रथ से जुते हुए हैं, ऐसे रथ में बैठी हुई, हथिनियों की निनाद से संसार को प्रफुल्लित करने वाली दैदीप्यमान एवं समस्त जनों को आश्रय देने वाली लक्ष्मी को मैं अपने सम्मुख बुलाता हूँ। दैदीप्यमान तथा सबकी आश्रयदाता वह लक्ष्मी मेरे घर में सर्वदा निवास करें।

ॐ कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मेस्थितां पदमवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम् ।। (४)

महा लक्ष्मी देवी का स्वरूप वाणी और मन का विषय न होने के कारण अवर्णनीय है। वह मंद हास्ययुक्ता हैं। वह चारों ओर सुवर्ण से ओत प्रोत हैं एवं दया से आर्द्र ह्रदय दैदीप्यमान हैं। स्वयं पूर्णकाम होने के कारण भक्तों के नाना प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करने वाली हैं। कमल के ऊपर विराजमान, कमल के सदृश्य गृह में निवास करने वाली संसार प्रसिद्ध लक्ष्मी को मैं अपने पास बुलाता हूँ।

ॐ चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्ती श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्र पद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ।। (५)

चंद्रमा के समान प्रकाश वाली प्राकृत कान्तिवाली, अपनी कीर्ति से दैदीप्यमान, स्वर्ग लोक में इन्द्रादि देवों से पूजित, अत्यंत दानशीला, कमल के मध्य रहने वाली, सभी की रक्षा करने वाली एवं अश्रयदाती, जगद्विख्यात उन लक्ष्मी को मैं प्राप्त करूँ। हे देव, मैं तुम्हारा आश्रय लेता हूँ।

ॐ आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या अन्तरा याश्च बाह्य अलक्ष्मीः ।। (६)

हे सूर्य के समान कांति वाली देवी, आपके तेजोमय प्रकाश से बिना पुष्प के फल देने वाला एक वृक्ष विशेष उत्पन्न हुआ, जिसे विल्व वृक्ष कहते हैं। वह विल्व वृक्ष का फल मेरे बाह्य और आभ्यन्तर की दरिद्रता को नष्ट करे।

उपैतु मां देवसखः कर्तिश्च मणिना सह ।
प्रदुभुर्ताऽस्मि रास्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिम ददातु मे ।। (७)

हे लक्ष्मी, देवसखा अर्थात श्री महादेव के सखा (मित्र) इन्द्र, कुबेरादि देवताओं की अग्नि मुझे प्राप्त हो ,अर्थात मैं अग्निदेव की उपासना करूँ। मणि के साथ अर्थात चिंतामणि के साथ या कुबेर के मित्र मणिभद्र के साथ या रत्नों के साथ, कीर्ति कुबेर की कोषशाला या यश मुझे प्राप्त हो, अर्थात धन और यश दोनों ही मुझे प्राप्त हों। मैं इस संसार में उत्पन्न हुआ हूँ, अतः हे लक्ष्मी, आप यश और ऐश्वर्य मुझे प्रदान करें।

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठमलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धि च सर्वां निर्गुद में गृहात् ।।(८)

भूख एवं प्यास रूप मल को धारण करने वाली एवं लक्ष्मी की ज्येष्ठ भगिनी दरिद्रता मुझसे सदा ही दूर रहें, ऐसी प्रार्थना करता हूँ। हे लक्ष्मी, आप मेरे घर में आने वाले ऐश्वर्य तथा धन को बाधित करने वाले सभी विघ्नों को दूर करें।

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप हवये श्रियम् ।। (९)

सुगन्धित पुष्प के समर्पण करने से प्राप्त करने योग्य, किसी से भी न दबने योग्य, धन धान्य से सर्वदा पूर्ण कर गौ, अश्वादि पशुओं की समृद्धि देने वाली, समस्त प्राणियों की स्वामिनी तथा संसार प्रसिद्ध लक्ष्मी को मैं अपने घर परिवार में सादर बुलाता हूँ।

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशुनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ।। (१०)

हे लक्ष्मी, मैं आपके प्रभाव से मानसिक इच्छा एवं संकल्प तथा वाणी की सत्यता, गौ आदि पशुओ के रूप (अर्थात दुग्ध, दधि आदि) एवं अन्नों के रूप (अर्थात भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, चतुर्विध भोज्य पदार्थ) इन सभी पदार्थो को प्राप्त करूँ। सम्पति और यश मुझ में आश्रय लें, अर्थात मैं लक्ष्मीवान एवं कीर्तिमान बनूँ, ऐसी कृपा करें।

कर्दमेन प्रजा भूता मयि संभव कर्दम ।
श्रियम वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ।।(११)

हे कर्दम आप अपनी माँ लक्ष्मी से हमारे लिए ही नहीं, अपितु हमारे सभी परिवार तथा हमारी समस्त प्रजा के कल्याण के लिए हमारी ओर से प्रार्थना करें कि माँ लक्ष्मी हम सभी के कल्याणार्थ हमारे घर आयें। हमारे यहाँ आप अपनी माँ के साथ रहें ताकि हम भी सुख पूर्वक निवास करें। हे कर्दम, आपसे हमारी प्रार्थना है कि आप हमारे घर आयें, हमारे यहाँ निवास करें, क्योंकि आपके हमारे यहाँ आने से माँ लक्ष्मी को मेरे यहाँ आना ही पड़ेगा। हे कर्दम, मेरे घर में लक्ष्मी निवास करें, केवल इतनी ही प्रार्थना नहीं है, अपितु कमल की माला धारण करने वाली संपूर्ण संसार की माँ लक्ष्मी को मेरे घर में आप निवास कराओ।

आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस् मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ।।(12)

जिस प्रकार कर्दम की संतति 'ख्याति 'से लक्ष्मी अवतरित हुईं, उसी प्रकार कल्पान्तर में समुन्द्र मंथन द्वारा चौदह रत्नों के साथ लक्ष्मी का भी आविर्भाव हुआ है। इसी अभिप्राय से कहा जा सकता है कि वरुण देवता स्निग्ध अर्थात मनोहर पदार्थो को उत्पन्न करें। पदार्थो की सुंदरता ही लक्ष्मी है।

लक्ष्मी के आनंद, कर्दम ,चिक्लीत और श्रित, ये चार पुत्र हैं। इनमें 'चिक्लीत' से प्रार्थना की गई है कि हे चिक्लीत नामक लक्ष्मी पुत्र, तुम मेरे गृह में निवास करो। केवल तुम ही नहीं, अपितु दिव्यगुण युक्त सर्वाश्रयभूता अपनी माता लक्ष्मी को भी मेरे घर में निवास कराओ।

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिंडगलां पदमालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मी जातवेदो म आ वह ।। (१३)

हे अग्निदेव, तुम मेरे घर में पुष्करिणी अर्थात दिग्गजों (हाथियों) के सूंडाग्र से अभिषिच्यमाना (आर्द्र शरीर वाली) पुष्टि को देने वाली अथवा पुष्टिरूपा रक्त और पीतवर्णवाली, कमल कि माला धारण करने वाली संसार को प्रकाशित करने वाली प्रकाश स्वरुप लक्ष्मी को बुलाओ।

आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मी जातवेदो म आ वह ।। (१४)

हे अग्निदेव, तुम मेरे घर में भक्तों पर सदा दयार्द्रचित अथवा समस्त भुवन जिसकी याचना करते हैं, दुष्टों को दंड देने वाली अथवा यष्टिवत् अवलंबनीया (सारांश यह है, कि जिस प्रकार लकड़ी के बिना असमर्थ पुरुष चल नहीं सकता, उसी प्रकार लक्ष्मी के बिना संसार का कोई भी कार्य नहीं चल सकता), सुन्दर वर्ण वाली एवं सुवर्ण कि माला वाली सूर्यरूपा, अर्थात जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाश और वृष्टि द्वारा जगत का पालन -पोषण करता है उसी प्रकार लक्ष्मी ,ज्ञान और धन के द्वारा संसार का पालन - पोषण करती है, अतः प्रकाश स्वरूपा लक्ष्मी को हमारे लिए बुलाओ।

तां म आवह जातवेदो लक्ष्मी मन पगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम् ।। (१५)

हे अग्निदेव,तुम मेरे यहाँ उन जगद्विख्यात लक्ष्मी को जो मुझे छोड़कर अन्यत्र न जाने वाली हों, उन्हें बुलाओ। जिन लक्ष्मी के द्वारा मैं सुवर्ण, उत्तम ऐश्वर्य, गौ, दासी, घोड़े और पुत्र-पौत्रादि को प्राप्त करूँ, अर्थात स्थिर लक्ष्मी को प्राप्त करूँ।

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ।। (१६)

मैं लक्ष्मी की कामना करता हूँ। पवित्र हृदय से अग्नि में गौघृत का हवन और साथ ही श्रीसूक्त की ऋचाओं का पाठ करता हूँ। हे लक्ष्मी माँ, मुझ पर प्रसन्न हो।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

राजकुमार अग्रसेन की आराधना से प्रसन्न हो माँ लक्ष्मी उनके समक्ष प्रगट हुईं, तथा उनके वंश में सदैव विद्यमान रहने का आशीर्वाद दिया।

उन्होंने राजकुमार अग्रसेन को बताया कि जिस स्थान पर वह आराधना कर रहें हैं यहां स्वर्ण भण्डार छिपा हुआ है। माँ ने कहा कि यह भण्डार उनके वंशज चक्रवर्ती सम्राट मरू का है, जो चक्रवर्ती सम्राट कुश (भगवान् श्री राम के पुत्र) के २३वें वंशज थे। उन्होंने एक विशाल अश्वमेध यज्ञ किया था। उनके राज्य के समय एक बहुत बड़े भूकंप ने इस स्वर्ण भण्डार को पृथ्वी के आगोश में दबा दिया था। अब तुम महर्षि गर्ग के निर्देशानुसार इस भण्डार को खोदो, और एक नए राज्य की स्थापना करो।

सम्राट अग्रसेन - एक संक्षिप्त परिचय

महर्षि गर्ग मुनि एवं उनके शिष्यों की सहायता से तब राजकुमार अग्रसेन ने एक नगर की स्थापना जिसका नाम अग्र नगर रखा गया। धीरे धीरे नगर का विस्तार कर उसे एक राज्य का रूप दिया। महर्षि गर्ग ने फिर बड़ी धूम धाम से उनका राज्याभिषेक किया। पेड़ लगाये गये। बाग बगीचे बनाये गये। महल और अन्य भवन बनाए गये। मंदिर और धर्मशालाऐं बनायी गयीं। देखते ही देखते उस नगरी में पक्षी चहकने लगे, बाग बगीचे महकने लगे। मंदिर में शंख और घंटे बजने लगें। शीतल एवं सुगन्धित हवाएं ताल तालाबों को ठण्डे करने लगे। वृक्ष फल और छाया देने लगे। कोयल कूकने लगीं। मोर नाचने लगे। सुखः शान्ति और समृद्धि की हवा बहने लगी।

अग्र नगर के राज्याभिषेक के बाद, अपने इष्टगुरु महर्षि गर्ग के निर्देशानुसार उन्होंने प्रताप नगर पर चढ़ाई कर दी, तथा कुन्द्सेन् का अंत कर प्रताप नगर को अपने राज्य में मिला लिया।

सम्राट अग्रसेन की विजय यात्रा इसके पश्चात थमी ही नहीं। उन्होंने अपने राज्य का विस्तार कई राज्यों को अपने साम्राज्य में मिलाकर किया। उनके नाम क्रमश: हिसार, हाँसी, तोसाम, सिरसा, नारनोल, रोहतक, पानीपत, जींद, कैथल, मेरठ सहारनपुर, जगाधारी, नाभा, अमृतसर, अलवर, उदयपुर आदि थे।

महाराजा अग्रसेन ने एक-तंत्रीय शासन प्रणाली को समाप्त कर विश्व में सर्वप्रथम अपने ढंग की अनोखी लोक-तन्त्रीय शाखा प्रणाली का शुभारंभ किया। सम्राट बनकर अपने राज्य में समाजवाद की प्राण प्रतिष्ठा की। समाजवाद का अर्थ सभी संपत्ति समाज की। उन्होंने इसी सिद्धांत को प्रतिस्थापित किया। सही अर्थ में वे एक सच्चे प्रथम समाजवादी सम्राट थे। महाराजा अग्रसेन के राज्य में गरीब एवं ऊंच नीच का कोई भेद भाव नहीं था। अपने राज्य में हर नए आने वाले व्यक्ति को एक मुद्रा एवं एक ईंट भेंट स्वरूप देने की परम्परा कायम की ताकि सभी समान होकर रहें। इस सभ्यता और संस्कृति ने भारतीय समाज ही नहीं, बल्कि विदेशों को भी प्रभावित किया। उनके राज्य में न कोई छोटा, न कोई बड़ा, सब समान थे अर्थ समाज में पारस्परिक प्रेम, सहयोग, भाई-चारे, त्याग आदि आदर्शों के कारण सुख-सरिता प्रवाहित होती थी। सभी एक दूसरे के लिए जीते थे। शोषण का कही नाम नहीं था। वे वास्तव में लोकतंत्र एवं पंचायती शासन के प्रेरक थे।

विवाह

इष्टगुरु महर्षि गर्ग मुनि ने उन्हें मणिपुर सम्राट नागराज महीधर की कन्या राजकुमारी माधवी से विवाह करने की सलाह दी, अतैव उनके आदेश के अनुसार उन्होंने राजकुमारी माधवी से विवाह किया।

महर्षि गर्ग एक समय घूमते घूमते नागराज के शासन मणिपुर में पहुंचे। नागराज ने अपनी कन्या माधवी को उनके चरणों में डाल दिया तथा एक उपयुक्त वर बताने की प्रार्थना की। महर्षि ने नागराज को कहा कि राजकुमारी माधवी के लिए वर तो अनेक हो सकते हैं, लेकिन सम्राट अग्रसेन से बेहतर कोई नहीं। उन्होंने सम्राट अग्रसेन के बारे में उन्हें बताया। उनकी वाणी सुनकर राजकुमारी माधवी को सम्राट अग्रसेन से प्रेम हो गया।

महर्षि गर्ग ने नागराज को स्वयंवर की आयोजना करने की सलाह दी। उन्होंने कहा कि वह क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए इस स्वयंवर में सभी राजाओं को आमंत्रित करें, तथा सम्राट अग्रसेन को भी।

नागराज महीधर ने अपनी कन्या माधवी के लिए स्वयंवर रचाया। भूलोक के अनेक राजाओं के साथ देवराज इंद्र भी इस स्वयंवर में आए। नाग कन्या माधवी ने वरमाला महाराजा अग्रसेन के गले में डाल दी। यह विवाह दो संस्कृतियों का मिलन था। देवराज इंद्र नागकन्या माधवी पर मोहित थे तथा उससे विवाह रचाकर नागवंश को अपने साथ करना चाहता थे, परंतु इसमें उनको सफलता नहीं मिली। इससे उनके मन में महाराज अग्रसेन के प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया, और उनके राज्य में वर्षा बंद कर दी। इससे प्रताप नगर में भयंकर अकाल पड़ गया तथा चारों ओर त्राहि त्राहि मच गई। महाराज अग्रसेन ने तब क्रोधित होकर देवराज इंद्र पर चढ़ाई कर दी। महाराजा अग्रसेन के पास जो नैतिक बल था उसके सामने देवराज इंद्र की सेना नहीं टिक पाई और घबराकर देवराज इंद्र युद्ध से भाग गया। इस अवस्था में देवराज इंद्र ने देवर्षि नारद को महाराज अग्रसेन के पास संधि प्रस्ताव ले कर भेजा। देवर्षि नारद ने महाराजा अग्रसेन व देवराज इंद्र के बीच तब संधि करा दी। अकाल की स्थिति में महाराजा अग्रसेन जी ने धन के सारे भंडार प्रजा के लिए खोल दिए। राज्य के अन्न भंडार खाली हो गए। भण्डारी ने राजमहल के उपयोग के लिए कुछ भण्डार बचा लिया था। भूख से प्रजा का बुरा हाल था। महारानी माधवी को जब स्थिति का पता चला, उन्होंने भण्डारी को डांटा और कहा कि राजा पिता के समान होता है, और पिता का कर्तव्य है कि स्वयं भूखा रहकर बच्चों की उदर पूर्ति करे। उन्होंने राजमहल

की सारी सामग्री, अन्न आदि, प्रजा में वितरित करा दी। भंडारी के इस बोध अपराध स्वरुप राज परिवार के सदस्यों ने प्रायश्चित हेतु उपवास शुरू कर दिया।

श्रुति में ऐसा वर्णित है कि जब हस्तिनापुर के चक्रवर्ती सम्राट युधिष्ठिर को सम्राट अग्रसेन के राज्य में अकाल का पता चला तो उन्होंने १००० बैल गाड़ियां अन्न से भरकर अग्रोहा भिजवाईं। स्वयं युवराज भीमसेन जिन्हें सम्राट अग्रसेन 'चाचा' कहकर पुकारते थे, इन गाड़ियों को लेकर अग्रोहा पहुंचे। सम्राट अग्रसेन ने उनका खुले दिल से स्वागत किया।

अकाल समाप्त होने के बाद, सम्राट अग्रसेन ने सम्राज्ञी माधवी के साथ भगवान् शंकर के आशीर्वाद से भारत भ्रमण किया। इस भ्रमण का मुख्य उद्देश्य विश्व शांति था। यात्रा के समय जंगल में एक स्थान पर सम्राट को बाघ एवं भेड़िये साथ साथ खेलते दृष्टिगोचर हुए। सम्राट एवं सम्राज्ञी ने इसे विश्व शांति हेतु शुभ संकेत समझा, तथा वापस अपनी राजधानी अग्रोहा में आ गए।

देखते देखते अग्रोहा एक अत्यंत संभ्रांत एवं शक्तिशाली राज्य बन गया। सम्राट अग्रसेन का प्रभाव पड़ोसी राज्यों के ऊपर भी अत्यंत था। पड़ोसी राज्यों की मदद से सम्राट अग्रसेन के समय में समस्त भारतवर्ष में व्यापार, कृषि एवं उद्योग का अत्यंत विकास हुआ।

गृहस्थ जीवन एवं अठारह यज्ञ

सम्राट अग्रसेन विवाह पश्चात अपनी धर्मपत्नी महारानी माधवी के साथ अपनी राजधानी अग्रोहा में रहने लगे। महारानी माधवी पतिव्रत धर्म का पालन करते हुए सम्राट अग्रसेन के शासन में पूर्णतः उनका साथ देती थीं।

महाराजा अग्रसेन एवं महारानी माधवी ने इष्टगुरु महर्षि गर्ग मुनि के आदेशानुसार धन-धान्य की देवी लक्ष्मी जी की फिर से आराधना शुरू की। महालक्ष्मी जी ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिए तथा वरदान दिया कि पुत्र, तेरे कुल में कभी भी किसी को भी कोई अभाव नहीं रहेगा। उन्हें महाप्रतापी होने का आशीर्वाद भी दिया।

अपने राज्य काल में महाराजा अग्रसेन ने १८ महायज्ञ आयोजित किए। उस युग में यज्ञ करना तथा उसमें सफलता प्राप्त करना सम्मान का प्रतीक माना जाता था। अंतिम यज्ञ के समय महाराजा अग्रसेन जी ने देखा कि बलि के लिए लाए जा रहे पशु बलि के स्थान पर आगे बढ़ने के स्थान पर पीछे हट रहे हैं। महाराजा अग्रसेन के मन में पशुओं के प्रति करुणा उत्पन्न हुई। उन्होंने इस अंतिम यज्ञ में पशु बलि के स्थान पर श्रीफल की पूर्ण आहुति दी। यह परम्परा आज भी उसी प्रकार संलग्न है। उन्होंने अपने राज्य में पशु-वध पर पूर्ण रूप से प्रतिबंध लगा दिया तथा सभी को अहिंसा का पाठ पढ़ाया।

पशुश्चेन्निहतरू स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति ।
स्वपिता यजमानेन तत्र कथं न हिंस्यते ।।
(सर्व दर्शन संग्रह - चार्वाक दर्शन)

महाराजा अग्रसेन जी के १८ पुत्र हुए। उन्होंने इन सभी राजकुमारों के साथ १८ महायज्ञ किये। उस समय के १८ महर्षियों के नाम पर १८ गोत्रों की स्थापना की। आज महाराजा अग्रसेन का अग्रवाल समुदाय इन १८ गोत्रों में विधिवत है। अपने गोत्र को छोडक़र अन्य गोत्रों में विवाह का नियम बनाकर एक सभ्य, सुसंस्कृत और मजबूत मानवीय समाज की आधार शिला रखी। ये १८ गोत्र गीता के १८ अध्यायों की भांति अलग-अलग होकर भी एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। बड़े पुत्र राजकुमार विभु की प्रशासनिक व्यवस्था में महाराजा अग्रसेन ने अपने राज्य को १८ गोत्र जनपदों में विभक्त कर अपने एक एक पुत्र को उसका अधिशासी बनाया, तथा विश्व में सर्वप्रथम लोक-तांत्रिक प्रणाली का शुभारंभ किया। बिना रक्त की एक बूंद बहाए समाज में समानता लाने तथा वैभव को बांटने का यह प्रयत्न अनुपम उदाहरण है

उनका नारा था - एक सब के लिए, सब एक के लिए - 'सर्वजन सुखाय सर्वजन हिताय'।

अग्रवालो के गोत्रों एवं जिन महर्षियों ने उन गोत्रों के लिए यज्ञ संपन्न किया उनका वर्णन निम्न किया गया है।

१. गर्ग – महर्षि गर्ग आचार्य
२. गोयल – महर्षि गोभिल
३. बंसल – महर्षि वत्स
४. कंसल – महर्षि कौशिक
५. सिंघल – महर्षि शांडिल्य
६. मंगल – महर्षि मंगल
७. जिंदल – महर्षि जैमिनी
८. तिंगल – महर्षि तान्डव्य
९ . एरण – महर्षि और्व्य
१०. धारण – महर्षि धौम्य
११. तायल – महर्षि मुद्गल
१२. बिंदल – महर्षि वशिष्ठ
१३. मित्तल – महर्षि मैत्रेय
१४. कुचल – महर्षि कश्यप
१५. भंडाल – महर्षि कात्यायन
१६. नंगल – महर्षि नागेंद्र
१७. मधुकुल – महर्षि शाकल्य
१८. गोयन – महर्षि गौतम

१०८ वर्षों तक राज्य करने के पश्चात महाराजा अग्रसेन अपनी कुलदेवी महालक्ष्मी जी की आज्ञा से अपने बड़े पुत्र विभू, जिनका नाम महर्षि गर्गाचार्य पर आधारित गर्ग भी पड़ा, को प्रतापनगर राज्य सौंपकर स्वयं वानप्रस्थ को चले गए।

शास्त्रों में ऐसा वर्णित है कि सम्राट अग्रसेन को महर्षि गर्ग ने चिरायु का आशीर्वाद प्रदान किया था। वह आज भी कैलास पर्वत पर भगवान् शिव शंकर और अपने सद्गुरु महर्षि गर्ग के साथ निवास करते हैं। जब भी उनकी आराधना कर उनको आमंत्रित किया जाता है, वह सूक्ष्म शरीर में अपने भक्त को आशीर्वाद देने प्रगट होते हैं।

एवं राजा सम्प्रनीतो मिथ्या व्याशींकातात्मना ।
चकार शान्तिम परमात्म नरधर्मं जन्मेजयात ।।

जब भी जीवन में कोई संताप हो, सम्राट अग्रसेन की शुद्ध हृदय से स्तुति और उनके पवित्र जीवन का इतिहास सुनने से हृदय को शांति मिलाती है।

शिक्षाएं/ उपलब्धियां

अग्रविश्व के संस्थापक महर्षि रामगोपाल बेदिल जी ने सम्राट अग्रसेन की शिक्षाएं एवं उपलब्धियों का वर्णन निम्न प्रकार किया है।

विश्व शांति एवं सुखद जीवन रहस्य आधार

सम्राट अग्रसेन ने हमें मानव जीवन का उद्देश्य एवं मूल्य बताया। उन्होंने शास्त्रों में वर्णित मानव जन्म का रहस्य बतलाया। चौंसठ लाख योनिओं के पश्चात शुभ कर्म फल स्वरुप मानव शरीर की प्राप्ति होती है। मानव शरीर प्राप्त कर जीवन का उद्देश्य सच्चिदानंद की प्राप्ति तथा ईश्वर में विलीन (मोक्ष) होने का प्रयास करना है। जीवन के हर मोड़ (बचपन, यौवन, प्रौढ़ावस्था एवं बृद्धावस्था) पर उचित व्यवहार करते हुए किस प्रकार शारीरिक और मानसिक शांति प्राप्त की जा सकती है, इसका मार्ग उन्होंने सुझाया।

महर्षि जैमिनी कहते हैं:

एतदाश्चर्यमाख्यानमं माया प्रोक्तमं सुखावहं |
मानवमं धर्ममास्थाय कथा पुण्या प्रबोधिता ||

जब भी जीवन में निराशा एवं भ्रम की स्थिति हो, सम्राट अग्रसेन की जीवन कथा जीवन में साहस एवं रूचि प्रदान कर मानव शरीर की समाज के प्रति अर्पित होने की भावना जाग्रत करती है। चक्रवर्ती सम्राट जनमेजय जी जब ऐसी ही विषम स्थिति से गुज़र रहे थे, तब महर्षि जैमिनी द्वारा इन कथाओं के वक्तव्य ने उन्हें एक नई ऊर्जा दे उनके जीवन में प्रसन्नता डाल दी।

समानता विचार संस्थापक

सम्राट अग्रसेन ने हमें 'समानता' की संकल्पना से अवगत कराया। महर्षि जैनिमी जी कहते हैं:

आत्रृष्यन्स्यमं परो धर्म याच्यते यत् प्रदीयते |

सम्राट अग्रसेन ने हमें सभी के प्रति दया भाव का पाठ पढ़ाया, विशेषकर उन लोगों के प्रति जो समाज में आर्थिक स्तर पर हीन अथवा निम्न हैं। सम्राट अग्रसेन ने दर्शाया कि परोपकारी एवं दानशील व्यक्ति ही भगवान् का दूसरा रूप होता है।

क्रषाय क्रतविद्याय व्रत्तिक्षीनाय सुव्रत।
क्रिया नियमिता कार्या पुत्रैर्दरिश्चा सीदते ॥
आयाचमाना सर्वज्ञा सर्वपायै प्रयत्नत।
ते रक्षणीया विव्दान्स सर्वकामसुखावहै ॥

सम्राट अग्रसेन ने इस बात को समझाया कि समाज के धनवान एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों को विशेषकर उनकी सहायता करनी चाहिए जो बुद्धिमान तो हैं, परन्तु परस्थितिवस जीविका याचन एवं पर्याप्त धन कमाने में असमर्थ हैं।

इसका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए स्वयं के सभी अठारह पुत्रों को उन्होंने ऐसा आदेश दिया कि वर्ण, जाति अथवा सामाजिक स्तर को अनदेखा कर ऐसे व्यक्तियों की हर प्रकार से मदद की जाए।

अपरेशामं परेशामं च परेभ्यश्चापि ये परे।
कष्टेशं जीवितेनार्थस्त्वामं विना बन्धुराश्राय ॥

सम्राट अग्रसेन कहते हैं, "समाज के निर्धन अथवा असहाय लोगों की मदद इस प्रकार करनी चाहिए कि उन्हें मदद स्वीकार करने में किसी भी प्रकार का अपमान न महसूस हो। उन्हें केवल ऐसा भान हो कि यह आप अपना कर्तव्य निभाने के लिए ही कर रहे हैं।

सर्वोत्थानाय सश्रद्धमम् भ्रात्भावेन चावह।
योगमं क्सेमन्चा मन्वान ग्रह्णीयुस्तेभिमानत ॥
देयानि व्रत्तिक्षीनाय पौरैरेकैकाश क्रमात्।
गत्वा निस्केष्तिकामं ददयु जनः कुर्यान्नयाचानां ॥

सम्राट अग्रसेन के कहा, "हे पुत्रो, हमारे इस अग्रोहा राज्य में किसी भी आवश्यक्ता वाले व्यक्ति को जीविका के अवसर से वंचित कदापि न करो। इस कार्य में जाति, वर्ण और सामाजिक स्तर का कोई महत्व नहीं। जभी भी कोई प्रवासी हमारे राज्य में आए तो उसे अग्रोहा राज्य के प्रत्येक परिवार से एक ईंट और एक स्वर्ण मुद्रा प्रदान करने की व्यवस्था करो।

एष ते वित्तमम वत्स सर्वभुतकुतुंबकं |
विसिस्त सर्वयज्ञानामं नित्यमत्र प्रवर्ततां ||

सम्राट अग्रसेन कहते हैं, "इससे समाज में समानता और मानवता की भावना बढ़ेगी, जो सहस्त्र यज्ञों से भी अधिक फलदाई है। तुम मेरे ही अंश हो, अतः इस कर्म योग को अपने सम्पूर्ण जीवन तक कार्यान्वित करते रहो।"

इस प्रकार सम्राट अग्रसेन ने वेद मन्त्र, "वसुधैव कुटुम्बकम" को चरित्रार्थ किया । समस्त विश्व एक ही परिवार है।

दो संस्कृति के समन्वयक

इतिहास साक्षी है कि दो संस्कृति, वैष्णव (आर्य) एवं शैव्य (नाग), में सदैव मनमुटाव रहा है। सनातन धर्म का यह पूर्व काल में दुर्भाग्य रहा है कि दोनों उसी के पुत्र-पुत्री आपस में लड़ते रहे हैं।

सम्राट अग्रसेन के ससुर नागराज महीधर शैव्य संस्कृति के अनुयायी होने के कारण वैश्यों से घृणा करते थे।

यथा पुस्करपत्रसु पतितास्तोयबिन्दव |
तथा न स्लेसमिच्चन्ति जञातय स्वेषु सौह्दं ||

नागराज महीधर कहा करते थे कि हमारे इष्टों के वाहन, भगवान् विष्णु के गरुड़ एवं शैव्यों के नाग, एक दूसरे के घोर शत्रु हैं। तब हमारा मिलाप कैसे संभव है?

ह्स्यन्ति वयसनेस्वेते ज्ञातिनामं जञातय सदा |
नागकन्यामं प्रार्थयानस्त्वमं नाप्यामक्रृतात्मभिः ||

नागराज महीधर कहते हैं, " मैं वैष्णव समाज को भली भांति जानता हूँ। हमारे कठिन समय पर वह आनंदित होते हैं। उनका मन मैला है। वह सात्विक विचारों वाले नहीं हैं।"

नागराज महीधर की वैष्णव समाज से शत्रुता इतनी गहन थी कि उन्होंने हृदय में अपनी पुत्री माधवी का विवाह किसी भी वैष्णव से न कर इंद्र के साथ करने का मन बना लिया था। महर्षि गर्ग से मिलने के पश्चात ही उनका हृदय परिवर्तित हुआ, और महर्षि के निर्देशानुसार उन्होंने अपनी पुत्री माधवी के लिए स्वयंवर की व्यवस्था की। जैसा जगत विदित है कि स्वयंवर में राजकुमारी माधवी ने सम्राट अग्रसेन को अपने पति के रूप में स्वीकार किया।

सम्राट अग्रसेन से मिलने पर उनकी सुंदरता और गुणवत्वा दोनों से ही नागराज महीधर एवं राजकुमारी माधवी अत्यंत प्रभावित हुए।

महर्षि जैमिनी कहते हैं:

युवा मतिमतमं श्रेष्ठो जञानविज्ञानकोविदा |
सर्वानेव निजग्राह चकार निरुत्तरं ||

सम्राट अग्रसेन, एक युवा आर्य, स्वयंवर में उपस्थित समस्त राजाओं से अत्यंत सुन्दर एवं बुद्धिमान थे।

इस विवाह ने दो संस्कृति का मिलाप कर सदैव के लिए वैष्णव एवं शैव्यों की शत्रुता को समाप्त कर दिया।

वर्गावुभौ नागनराधिपानामं व्दारेपिधाने ह्युभयप्रदेषात |
षमॅयतुर्व्दावपि भिन्नवेषौ भन्नैकसेतु पयसामिवोघौ ||
वैवाहिके कौतुक संविधाने वर्गावुभौ नागनराधिपानाय् |
एकिक्रतौ सानुमतोनुरागादस्तान्तरावेक कुलोपमेयं ||

नागराज महीधर ने सात तालों का राज्य सम्राट अग्रसेन को विवाह उपहार स्वरूप दिया। ये सात ताल थे, तल, अतल, वितल, सुतल, तळतळ, रसातल एवं पाताल ।

इन सात राज्यों को विवाह उपहार स्वरूप देने के पश्चात नागराज बोले:

अग्रस्य नाम्ना भाषेरान इममं लोकम तलोत्तमं |

यह सभी सात राज्य अब सम्राट अग्रसेन की प्रभुता में रहेंगे।

षुसन्स्क्रृतेभ्य सर्वेभ्य रमणीयो भविष्यति |
ईदमग्रतलमम् नाम्ना त्रिषु लोकेषु विश्रुतं ||

हमारा मुख्य उद्देश्य दो संस्कृतिओं का मिलाप है। इस मिलाप की प्रसन्नता में हम अपनी राजधानी का नाम "अगरतला" रखते हैं, जो तीनों लोकों, देवलोक, नागलोक एवं मानवलोक की प्रतीक रहेगी।

सर्वरत्नाकरवती सर्वकामफलद्रुमा |
सर्वाश्रमाधिवासा सग्रतलाख्य गुनैर्युता ||

यह नगर जवाहरातों की तरह अमूल्य होगा। यहाँ कल्पवृक्ष की स्थापना की जाएगी जो सभी की इच्छाओं की पूर्ती करेंगे। सभी धर्मावलम्बी यहाँ स्वतंत्र रूप से निवास कर सकते हैं। यह नगर शान्ति एवं संतोष का एक उदाहरण होगा।

नारी गरिमा के समर्थक

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि स्वयंवर में राजकुमारी माधवी ने सम्राट अग्रसेन को अपना पति चुना। जैसा कि उस समय की प्रथा थी, तब नागराज महीधर ने अपनी अन्य पुत्रीओं को बुलाकर उन्हें भी सम्राट अग्रसेन को अर्पित करने की भावना से उन्होंने उनसे सभी से विवाह करने का प्रस्ताव रखा।

इस निवेदन पर सम्राट अग्रसेन ने बड़ी ही विनम्रता से उत्तर दिया:

कथमं नु वा मनस्विन्या माधव्या पानिपङ्ग्कजं |
ग्रहित्वा नागदुहितु लोकेधर्ममं चराम्यहम् ||

हे माननीय सम्राट नागराज, मेरे गुरु ने मुझे मन एवं उत्साह को नियंत्रण करना भली भांति सिखाया है। मझे लोकाचार्य का अनुसरण करने की शिक्षा दी है। मैंने आपकी पुत्री राजकुमारी माधवी से विवाह कर लिया है, अब मैं किसी और से विवाह नहीं कर सकता।

अनियोज्ये नियोगे मामं न निभुन्क्ष्व महामते।
भगिन्यो धर्मतो या मे तत्स्पर्शमम् तवमं कथमं वदे ||

हे बुद्धिमान नरेश नागेंद्र, आप मुझ से अन्यायपूर्ण कृत्य करने का आदेश दे रहें हैं जो मुझे स्वीकारने में गहन असुविधा होगी। सनातन धर्म कहता हैं कि पत्नी की बहनों को स्वयं की बहनों जैसा व्यवहार करो। कृपया मुझे अपनी दूसरी पुत्रियों को अपनी पत्नी बनाने का आदेश नहीं दीजिए।

अधर्मात पाहि नागेषा मामं धर्ममं प्रतिपादया |

हे श्रेष्ठ एवं पवित्र नरेश, आपको तो मुझे कोई भी अन्यायपूर्ण कार्य करने से रोकना चाहिए। मेरा जीवन उद्देश्य तो केवल धार्मिक जीवन बिताना है।

सम्राट अग्रसेन के ये सुन्दर विचार सुनने के बाद भी सम्राट नागेंद्र ने फिर से सम्राट अग्रसेन को अपनी अन्य पुत्रियों के साथ विवाह करने के लिए समझाने का दोबारा प्रयास किया।

नर्पस्य बहव्यो विहिता महिश्यो लोकसं माता।
श्रूयन्ते बहव पुनस एकस्या पतयोपि च||

सम्राट नागराज बोले, "हे राजन, आप अच्छी तरह जानते हैं कि वैष्णवों (आर्य वंश) में बहु-विवाह प्रथा है। मैंने तो सुना है कि आर्य वंश की सुन्दर राजकुमारियों को भी बहु-विवाह की अनुमति है। (यहां वह द्रौपदी के पांच पांडवों से विवाह की चर्चा कर रहे हैं)। क्या यह सत्य नहीं है?

हे सम्राट अग्रसेन, मैं तुम्हें बहु-विवाह की अनुमति देता हूँ। तुम इस से किसी पाप होने की आशंका नहीं करो। यह तो धार्मिक एवं न्यायपूर्ण कार्य है।

तब करबद्ध सम्राट अग्रसेन ने अपने नारी गरिमा के विचार पुनः रक्खे।

अधर्मोयमं मतो मेद्य विरुद्धो लोकगर्हित।
ततोहमं न करोम्येवमं व्यवसायमं कृयामं प्रति ||

सम्राट अग्रसेन बोले, "हे नागेंद्र, मेरे विचार से यह अन्यायपूर्ण एवं अधार्मिक कृत्य है। ऐसा करना बुद्धिमता नहीं है। मैं इस कार्य को करने में असमर्थ हूँ।"

आत्मनो य श्रुतो धर्म स धर्मो रक्षति प्रजा |
शरीरमं च धनमम् स्वर्गम्रशिन् पित्रन ||

"हे नागराज, श्रुति में पत्नी को पति का श्रेष्ठ अर्धांग कह कर सम्बोद्धित किया गया है। एक धार्मिक राजा का कार्य धार्मिक रूप से राज्य का संचालन करते हुए अपनी पत्नी, प्रजा, धन, परलोक एवं पूर्वजों के सम्मान की रक्षा करना है।"

क्रतदारोस्मि नागेन्द्र भार्येयमं दयिता मम |
पुरुशानामं च नारिनामं सुदु खा ससपत्नता ||

"हे नागेंद्र, मैं आपकी पुत्री माधवी को वरण कर चुका हूँ। प्रिय पत्नी माधवी के लिए मेरी अन्य सह-पत्नियों की कल्पना असहनीय हो सकती है, और यह उनके प्रति अन्याय होगा।"

इस प्रकार सम्राट अग्रसेन ने नारी गरिमा के अपने विचार रक्खे ।

न चान्यासामं पतिरहमम् सत्यमेतत् वचो मम |

सम्राट अग्रसेन ने दृढ़ता पूर्वक कहा, "क्योंकि मैंने राजकुमारी माधवी का वरण कर लिया है, अब मैं अन्य विवाह नहीं कर सकता। यह मेरा दृढ निश्चय है।"

महर्षि जैमिनी जी चक्रवर्ती सम्राट जन्मेजय से कहते हैं कि राजकुमारी माधवी एवं सम्राट अग्रसेन का विवाह दो वंश, आर्य और नाग, का मिलन था। सम्राट के नारी गरिमा विचारों ने नारी की पवित्रता को दर्शा कर यह सिद्ध किया है कि नारी कोई उपभोग की वस्तु नहीं, परन्तु जीवन रूपी रथ के दो पहियों में से एक पहिया है। विवाह को एक पवित्र रिश्ते के रूप में ही लिया जाना चाहिए। यह एक असाधारण कृत्य पहले कभी नहीं हुआ था।

उस काल में राज्य परिवारों में बहु-विवाह की कु-प्रथा प्रचलित थी। सम्राट अग्रसेन ने इसके विरुद्ध एक उदाहरण दे कर नारी गरिमा की प्रतिष्ठा बढ़ाई।

अहिन्सा प्रोत्साहक

अग्रविश्व के संस्थापक, वर्तमान अग्रवाल समाज के धार्मिक नेता आदरणीय संत महर्षि श्री राम गोपाल बेदिल जी कहतें हैं कि पवित्र शास्त्रमय जीवन का आधार अहिंसा ही है। एक राजा हिंसापूर्वक प्रवर्ति से अपनी प्रजा का सत्य रूप से पालन नहीं कर सकता। यही सम्राट अग्रसेन ने सिद्ध किया, और सब के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत किया।

सम्राट अग्रसेन एक बड़े ही दयालु राजा थे। उनकी दयालुता केवल अपनी प्रजा तक ही सीमित नहीं थी। वह पशु, पक्षी एवं सभी जीवित आत्माओं का सम्मान करते थे। उनकी पशु प्रेम की एक अत्यंत प्रसिद्ध कहानी प्रस्तुत है।

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है कि महर्षि गर्ग आचार्य के निर्देश पर सम्राट अग्रसेन राजकुमारी माधवी के स्वयंवर में भाग लेने नागलोक (पूर्वी भारत) पहुंचे। राजकुमारी माधवी से विवाह के पश्चात सम्राट अग्रसेन महर्षि उद्दालक के आश्रम मणिपुर उनके दर्शनार्थ गए। वहां हटकेश्वर मंदिर में उन्होंने भगवान् शिव की आराधना की। कई दिनों की यात्रा से सम्राट अत्यंत थकान का अनुभव कर रहे थे, अतः आश्रम में एक वृक्ष की छाया तले वह लेट गए और उन्हें नींद आ गई। जब वह निद्रा से जागे तो उन्होंने कुछ नाग-कन्याओं को स्नान हेतु झील में प्रवेश करते देखा। वहां गायों का समूह भी अपने बछड़ों सहित पानी पी रहा था। उसी समय एक क्रूर चीते ने दहाड़ता हुए झील में प्रवेश किया। चीते की दहाड़ ने गायों के समूह को भयभीत कर दिया।

स द्रष्ट्वा चिन्तयित्वाग्र सद्य सत्यपराक्रम |
श्रेष्ठो धनुष्मतामं वीरो दयाभावसमिरित ||

यह दृश्य देख सम्राट अग्रसेन ने तुरंत गायों एवं नागकन्याओं की रक्षा करने का संकल्प लिया। अत्यंत शूरवीर, परन्तु दयालु सम्राट चीते को भी हानि नहीं पहुंचाने चाहते थे।

ररक्ष विधिना गाश्च बानैर्व्याघ्रमतादय ।
शरसन्निचायस्थोयमं तमं गाव पर्यवारयन ॥

सम्राट ने अपने वाणों से चीते के चारों ओर एक व्यूह की रचना कर दी। इस कृत्य से जहां गायों और नागकन्याओं की जीवन रक्षा हुई, वहीं चीते की भी मृत्यु नहीं हुई। चीते को बाद में पकड़ कर उसे जंगल में छोड़ दिया गया। ऐसी दयालुता थी सम्राट अग्रसेन की पशुओं के भी प्रति।

सम्राट अग्रसेन के काल में समस्त आर्यावर्त में दैविक शक्तियों की प्राप्ति के लिए किये यज्ञों में पशु बलिदान की कु-प्रथा प्रचलित थी। सम्राट अग्रसेन ने अपने राज्य में इस कु-प्रथा को बंद कर अहिंसा का एक बड़ा उदाहरण प्रस्तुत किया।

उनके इस अहिंसा एवं पशु बलि न करने के निश्चय एवं आदेश का उस काल के ऋषिओं तक ने भी विरोध किया।

यज्ञार्थमं पशव स्रष्टा स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
यज्ञश्चा भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोवध ॥

ऋषिओं ने इस पशु बलि के आदेश का विरोध करते हुए कहा, "हे राजन, जो आप कहते हो वह सत्य हो सकता है, परन्तु यज्ञों में पशु बलि का विधान तो स्वयं ब्रह्मा ने दिया है। चूँकि ग्रंथों में इसे निषेध नहीं ठहराया गया अतः यह उचित ही है।

दयालु सम्राट अग्रसेन ने उन्हें श्रुति का एक श्लोक उदाहरण के रूप में तब प्रस्तुत किया।

व्रक्षान्श्चित्वा पशुन हत्वा क्रत्वा रुधिरकर्दमम् ।
यद्येवमं गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥

सम्राट अग्रसेन बोले, " वृक्ष काटना, पशुओं की हत्या करना, तथा इसी प्रकार के अन्य क्रूर कार्य उन आत्माओं के प्रति जिन्होंने आपकी कोई हानि नहीं की, वह नरक के द्वार हैं, ऐसा श्रुति कहती है। इसीलिये हे ज्ञानी ऋषिगणों, मेरे विचार में पशु हत्या एक

जघन्य अधार्मिक कृत्य है। मेरे विचार से कोई कितना भी ज्ञानी हो, अगर ऐसा अनार्य कृत्य करता है तो वह नरक का अधिकारी है।"

सम्राट अग्रसेन आगे बोले, "हे महर्षिओ, इन पवित्र नादान असहाय जीवों की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है, न कि अपने स्वार्थ के लिए दैविक शक्तिओं की प्राप्ति के लिए इनकी बलि चढ़ाना। इस कृत्य का किसी भी प्रकार से अनुमोदन नहीं किया जा सकता। पशु हत्या एक पाप है। पाप कर हम कैसे स्वर्ग की प्राप्ति की कामना कर सकते हैं? अपने कृत्यों का हरेक को फल भोगना पड़ता है, ऐसा श्रुति कहती है। अतः इस पाप का परिणाम केवल नरक प्राप्ति ही है।"

"हे महर्षिओ, अपनी स्वार्थ पूर्ती के लिए असहाय जीवों की हत्या करने के में घोर विरुद्ध हूँ।"

स्वषरिर्रमपि परार्थे य खलु दद्यादयाचित क्रपया |
स्वसुखस्य क्रते च कथमं प्रानिवधक्रौर्यमनुमन्ये ||

"हे महान ऋषीओ, प्रत्येक आत्मा भगवान् का स्वरुप है। अगर बलि से कोई लाभ हो सकता है, तो मैं स्वयं अपनी बलि देने को तैयार हूँ।"

प्रत्युत्तर में तब ऋषिगण बोले, "हे सम्राट अग्रसेन, क्षत्रिय राजाओं के लिए पशु बलिदान उनके राज्य में हितकारिता एवं प्रभुता लाने का साधन है। अगर आप यज्ञ में पशु बलि नहीं करेंगे तो यज्ञ को पूर्ण नहीं माना जाएगा, और यह आपके राज्य के लिए अनिष्टकारी होगा। इसका बुरा प्रभाव आपके भावी वंशजों पर भी पडेगा।"

सम्राट अग्रसेन फिर अत्यंत दृढ़ता से बोले, "ऋषिगणो, मेरे विचार से अहिंसा ही सत्य धर्म है। मैं अपने राज्य में किसी भी प्रकार से निर्दोष पशुओं की बलि देने की अनुमति नहीं दूंगा क्योंकि यह एक अधर्म कृत्य है।"

सत्यप्रतिश्रवा सोहमं वैश्यधर्मम् नु पालये |
प्रजानामात्रषन्स्यार्थमं वैश्यमं राज्यमं व्रतोत्तमं ||

सम्राट अग्रसेन ने कहा, "मैं आर्य वंशानुसार सनातन वैश्य धर्म पर निरंतर चलते रहने की प्रतिज्ञा करता हूँ। मैं श्रुति में वर्णित सनातन धर्म के नियमों का दृढ़ता पूर्वक पालन करूंगा। मैं अपनी प्रजा, जिसमें पशु भी सम्मलित हैं, उनकी सदैव रक्षा करूंगा एवं अपने राज्य में समृद्धि लाऊँगा। मैं अपने राज्य में सभी प्राणीओं के प्रति दयालुता का भाव रखूंगा।"

अहिन्सा सर्वभुतानामं नित्यमस्मासु रोचते |
प्रत्यक्षत साधयामो न परोक्षमुपास्महे ||

अपनी प्रजा को सम्बोधित करते हुए सम्राट अग्रसेन बोले, "मेरी प्रजा, तुम कभी भी हिंसा का मार्ग नहीं चुनना। अपने मानसिक अथवा शारीरिक कृत्यों द्वारा कभी किसी को दुःख नहीं देना। अहिंसा की बात केवल मुख से ही नहीं, परन्तु अपने कृत्यों से दर्शाना। तभी तुम अपने जीवन में शान्ति का अनुभव कर प्रकृति का सुख प्राप्त कर सकोगे।"

अद्वैतवाद प्रतिपादक (एक ईश्वर)

सम्राट अग्रसेन ने हमें अद्वैतवाद की शिक्षा दी। भगवान् एक ही हैं, उनके रूप अनेक हो सकते हैं।

भगवान् की व्याख्या उन्होंने अपने ससुर नागेंद्र महीधर जी को इस प्रकार की।

"हे श्रेष्ठ नागेंद्र, ज्ञान और भक्ति अलग अलग नहीं हैं। बिना भक्ति ज्ञान फलदाई नहीं होता। उदाहरण के तौर पर भगवान् शिव ज्ञान का प्रतिनिध्वत्व करते हैं और भगवान् विष्णु भक्ति का। लेकिन बिना एक दूसरे के ये अधूरे हैं। भगवान् शंकर भगवान् विष्णु के, एवं भगवान् विष्णु भगवान् शंकर के भक्त हैं।"

"हे नगेन्द्र, भगवान् विष्णु की भक्ति के प्रभाव से भगवान् शंकर माया से दूर रहते हैं। भगवान् शिव की अर्धांगिनी आदि-देवी (प्रकृति) हैं, जो भगवान् विष्णु की अभिव्यक्ति है। अतः भगवान् शंकर और भगवान् विष्णु में कोई अंतर नहीं है।"

यथैकेव सुर्योयमं ज्योतिर्णानार्चयते जनैः |
जलादि च विशेषेण दर्शयते तत्तथैव तौ ||

"हे नगेन्द्र, सूर्य तो एक ही है लेकिन जब इसका प्रतिबिम्ब लहरों से उत्तेजित समुद्र पर पड़ता है तो हर लहर में अलग अलग सूर्य दिखलाई पड़ते हैं। लहर शांत होने पर, एक ही सूर्य दिखलाई देता है। उसी प्रकार परमपिता के कई आकार हो सकते हैं, लेकिन वह एक ही हैं।"

सम्राट अग्रसेन आगे कहते हैं, "हे नगेन्द्र, उदाहरण स्वरुप ऊर्ध्वरेता शब्द के कई अर्थ हैं। एक अर्थ है ब्रह्मचर्य पालन करने वाला सन्यासी, तथा दूसरा अर्थ है ऊपर देखने वाला। लेकिन अंततः दोनों ही सन्यासी एवं ऊपर देखने वालों का ध्येय एक ही होता है। सन्यासी सूर्य रूपी प्रकाश को अपने अंदर जगाने के लिए ऊपर देखता है (ध्यानस्थ होता है), और सूर्य दर्शन के लिए मनुष्य को ऊपर देखना पड़ता है। समुद्र किनारे बैठा हुआ व्यक्ति हर लहर के साथ सूर्य देखता है, लहर थम जाने पर एक ही सूर्य के दर्शन होते हैं। उसी प्रकार अस्थिर मन वाला व्यक्ति प्रभु के अनेक रूप देखता है, तथा मन शांत होने पर केवल एक प्रभु के ही दर्शन होते हैं।"

इस प्रकार सम्राट अग्रसेन ने अद्वैतवाद की शिक्षा देकर दोनों वंश, आर्य एवं नाग, का एकाकीकरण किया।

पति-पत्नी एवं राजा-प्रजा कर्तव्य

सम्राट अग्रसेन ने पति-पत्नी एवं राजा-प्रजा के कर्तव्य एवं अधिकारों का विस्तृत वर्णन अपने पुत्रों को दिया। जिस प्रकार पत्नी का कर्तव्य अपने पति और परिवार का पूर्ण ध्यान रखना है, उसी प्रकार पति को उनकी रक्षा एवं परिवार का भरण पोषण करने के लिए पर्याप्त धन अर्जित करना है। उसी प्रकार जहां राजा को अपनी प्रजा में जनतंत्र की भावना के साथ उनकी हर बात को सुनना है, और उनकी सुरक्षा का पूर्ण प्रबंध करना है, वहीं प्रजा को देशभक्ति एवं देश के विकास की भावना के साथ यथोचित कर चुकाकर राजा के प्रति अपनी कृतज्ञता दर्शाते रहना है। दोनों ही, पति-पत्नी, एवं राजा - प्रजा, एक दूसरे के पूरक हैं।

यथा पत्याश्रयो धर्म स्त्रिनामं लोके सनातन |
सदैव सा गतिर्नान्या तथस्माकमम् प्रजाश्राय ||

सम्राट अग्रसेन के स्मरण की फलश्रुति

अति दयालु एवं भद्र सम्राट अग्रसेन वैश्य (अग्रवाल) समुदाय के संस्थापक थे। श्रुति कहती है कि उनका स्मरण, उनकी जीवन कथाओं का कथन एवं श्रवण मनुष्यों को जीवन में सांसारिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही गुणों को बढ़ाकर सफलता की ओर अग्रसर करता है।

महर्षि जैमिनी - प्रथम वाचक

सम्राट अग्रसेन की जीवन गाथा सर्व प्रथम महर्षि भगवान् वेद व्यास के परम शिष्य महर्षि जैमिनी जी ने अपनी कृति 'जयग्रंथ' में वर्णित की है। इन कथाओं को उन्होंने चक्रवर्ती सम्राट जन्मजेय जी को सुनाया। पिता चक्रवर्ती सम्राट परीक्षित जी की तक्षक सर्प के डसने से मृत्यु ने उनके हृदय की शान्ति भांग कर दी थी। सम्राट अग्रसेन की कथाओं ने उन्हें मानसिक शान्ति प्रदान की तथा उनके जीवन को प्रसन्नता से भर दिया।

सम्राट अग्रसेन की जीवन कथा का महत्व

महर्षि जैमिनी जी कहते हैं कि सम्राट अग्रसेन की जीवन कथाओं के कथन एवं श्रवण से महालक्ष्मी का आशीर्वाद प्राप्त होता है।

महालक्ष्मिवर इव ग्रन्थो मान्येतिहासक |
तमं कश्चित् पुण्ययगेन प्राप्नाति पुरुषोत्तम ||

महर्षि जैमिनी कहते हैं कि सम्राट अग्रसेन की पुण्य जीवन गाथा सुनने के पश्चात महालक्ष्मी के आशीर्वाद से सम्राट जन्मेजय एक चक्रवर्ती सम्राट बने और उन्होंने बड़ी सफलता से राज्य संचालित करते हुए अपनी प्रजा को धन-धान्य से युक्त एवं संतुष्ट रखा। सम्राट अग्रसेन की जीवन गाथाएं समस्त गाथाओं में अपूर्व एवं सर्वश्रेष्ठ हैं। केवल वही जिन्होंने इस जीवन अथवा पूर्व जन्म में अच्छे संस्कार एवं कृत्य किये हैं, उन्हीं को इन कहानिओं के पढ़ने एवं सुनने का अवसर प्रदान होता है। इन कथाओं के माध्यम से महालक्ष्मी के प्रसाद से जीवन में सुख एवं शांति प्राप्त होती।

आग्राख्यानमम् भवेद्यत्र तत्र श्री स्वसु स्थिरा |
क्रत्वाभिशेकमेतस्य तत पापै प्रमुच्यते ||

महर्षि कहते हैं कि जिस भी गृह में सम्राट अग्रसेन के जीवन गाथाओं की पवित्र पुस्तक/ पुस्तिका होगी एवं इसका नियमित तौर पर पठन एवं श्रवण होगा, उस परिवार से महालक्ष्मी अत्यंत प्रसन्न होंगी। जो परिवार इस पुस्तक/ पुस्तिका का पठन-पाठन एवं श्रवण महालक्ष्मी एवं सम्राट अग्रसेन के 'अभिषेक' के साथ करेगा, उसके जीवन की समस्त बाधाएं दूर हो उसे आत्मिक शांति प्रदान होगी।

ग्रन्थदर्षण योगोयमं सर्वलक्ष्मीफलप्रद |
दुःखानि चास्य नश्यन्ति सौख्यमं सर्वत्र विन्दति ||

महर्षि आगे कहते हैं कि ऐसा संभव इस जन्म अथवा पूर्व जन्म के संस्कारों एवं अच्छे कर्मों से ही संभव है। ऐसे परिवारों को महालक्ष्मी अपनी शरण में लेकर उनके कर्तव्य पालन में मार्ग निर्देश करते हुए उन्हें एक धार्मिक एवं सत्यनिष्ठ जीवन प्रदान करती हैं।

दर्शनेनालमस्यात्र ह्यभिषेकेन किमं पुना |
विलयमं यान्ति पापानि हिमवद् भास्करोदये ||

महर्षि कहते हैं कि उस परिवार के समस्त दुःख ऐसे समाप्त हो जाते हैं जैसे सूर्य की किरण पड़ते ही बर्फ पिघल जाती है। 'जल अभिषेक' के साथ स्तुति का महत्व और भी बढ़ जाता है।

प्रशस्याङ्गोपान्गयुक्त कल्पव्रक्षस्वरुपिने |
महासिध्दियुत श्रीमद्वोपाख्यान ते नाम ||

महर्षि के अनुसार सम्राट अग्रसेन की पुण्य जीवन गाथा निरंतर सुनते रहने से 'कल्पवृक्ष' की भांति इच्छायों की पूर्ति करते हुए प्राणी आठों सिद्धियां प्राप्त करने की क्षमता रखता है। हम आदर सहित सम्राट अग्रसेन एवं उनकी पुण्य गाथाओं को प्रणाम करते हैं।

चक्रवर्ती सम्राट जन्मेजय पर सम्राट अग्रसेन का आशीर्वाद

सर्व प्रथम सम्राट अग्रसेन के जीवन की पवित्र गाथा महर्षि जैमिनी जी ने चक्रवर्ती सम्राट जन्मेजय को सुनाई थी जिससे उन्हें अपने राज्य को सात्विक धार्मिक प्रकार से संचालित करने की प्रेरणा मिली। इन कथाओं को सुनने के पश्चात उनको अत्यंत मानसिक शान्ति मिली, और अपने राज्य को एक महान उदारमयी राजा की तरह उन्होंने संचालित किया।

जन्मेजय उवाच |

एषा धन्यो हि धन्यानामं धन्यक्रद धन्यपुन्नाव |
नरेसु तु सनागेसु नास्ति धन्यतरोग्रत ||

चक्रवर्ती सम्राट जन्मेजय जी कहते हैं ,"हे महर्षि, सम्राट अग्रसेन अवश्य ही एक महान आत्मा थे। उनकी जीवन गाथा तथा उनके राज्य संचालित करने की प्रणाली अत्यंत सात्विक, पवित्र एवं प्रजा को सुख देने वाली थी। मेरे विचार से सम्राट अग्रसेन मानवता के सबसे बड़े पुजारी थे।

ह्रदि मे जायते सौख्यमं परममं च तवाननात |
श्रन्वानस्याग्रसेनस्य पिबतस्चा कथाम्रतं ||

"हे महर्षि, उनकी गाथाएं सुनने के पश्चात मेरा ह्रदय प्रसन्नता से भर गया हैं।"

एक एव क्षीरनिधिरिह सन्तापहोच्यते |
किमं पुनश्चारन्द्रकिरनैर्मलयानिलसन्युतै ||
सुशीलत्वमं स गमित सुमनोभिरलन्क्रत |
चारितमं ह्यग्रसेनस्य श्रुत्वाहमम् ते मुने क्रति ||

चक्रवर्ती सम्राट जन्मेजय पुनः बोले, "हे महर्षि, मैंने ऐसा सुना है कि क्षीरसागर कोप से शीतलता प्रदान करता है। क्षीरसागर में अगर मलयाचल पर्वत की सुगंधिता समाहित होकर चंद्र की शीतल किरणों का प्रभाव भी आ जाय, तो वह क्षीरसागर कितना अद्भुत होगा। यह सम्राट अग्रसेन की गाथाएं इस क्षीरसागर के सदृश्य हैं

जिसमे मलयाचल पर्वत की सुगन्धता एवं चंद्र की किरणों की शीतलता छुपी है। सम्राट अग्रसेन की जीवन गाथा रहस्यमय, रोचक एवं जीवन को सत्य दिशा में निर्देश करने वाली हैं। इस कथाओं को आप जैसे महान महर्षि के द्वारा सुनने से इनका प्रभाव कई गुना बढ़ गया है, और मेरा मस्तिष्क पूर्ण शांति को प्राप्त हुआ है।"

श्रवणादेव लप्स्यन्ते प्रतिष्ठाज्ञानसंपदा |
अग्रसेनस्य माहात्म्यान्नाधर्मस्तान् भजिष्यति ||

"हे महात्मा, जैसा मैंने अनुभव किया है उसी प्रकार मेरा ऐसा मानना है कि यह गाथाएं पूर्ण वंश को पवित्र कर उनका आदर बढ़ाने वाली हैं। जो भी सम्राट अग्रसेन की जीवन गाथाओं को पढ़ेगा अथवा सुनेगा, माया उसे कभी लिप्त नहीं कर सकती। ये रहस्यमय कथाएं जीवन को प्रसन्नता से भर देंगी। जीवन काल में धार्मिक जीवन देने के साथ उसे धन-धान्य एवं संतुष्टि देते हुए अंत में मोक्ष की प्राप्ति कराएंगी। जिसे जीवन में सफलता प्राप्त कर धन-धान्य, भूमि, रण-विजय इत्यादि की कामना हो, उसे ध्यानपूर्वक इन सम्राट अग्रसेन की गाथाओं को पढ़ना अथवा सुनना चाहिए। इस से उसे उन सब सात्विक इक्षित वस्तुओं की प्राप्ति होगी जो उसे अत्यंत शांतिदायक होगी।"

अग्रोहा धाम एवं मंदिर अग्रोहा धाम

प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित आग्रेय ही अग्रवालों का उद्गम स्थान आज का अग्रोहा है। दिल्ली से १९० तथा हिसार से २० किलोमीटर दूर हरियाणा में महाराजा अग्रसेन राष्ट्र मार्ग संख्या – १०, हिसार-सिरसा बस मार्ग के किनारे एक खेड़े के रूप में स्थित है। जो कभी महाराजा अग्रसेन की राजधानी रही, यह नगर आज एक साधारण ग्राम के रूप में स्थित है जहाँ पांच सौ परिवारों की आबादी है। इसके समीप ही प्राचीन राजधानी अग्रेह (अग्रोहा) के अवशेष ६५० एकड भूमि में फैले हैं, जो इस महान जाति और नगर के गौरव पूर्ण इतिहास को दर्शाते हैं।

अग्रोहा धाम हिंदूओं का एक धार्मिक स्थल है जो भारत के राज्य हरियाणा हिसार के अग्रोहा में स्थित है। इस परिसर का निर्माण १९७६ में शुरू हुआ और १९८४ में पूरा हुआ था। यह मंदिर हिन्दू देवी महालक्ष्मी और अग्रसेन महाराज को समर्पित है। अग्रोहा धाम परिसर वास्तुकला बहुत सुन्दर है। देखने में यह परिसर किसी महल जैसा लगता है। परिसर के प्रवेश द्वारपर दोनों तरफ हाथी की मूर्तियां स्थापित की गई हैं।

अग्रोहा धाम परिसर को तीन मुख्य भागों में विभाजित किया गया है। परिसर के केन्द्र में देवी महालक्ष्मी जी का मंदिर है। परिसर के पश्चिमी भाग में देवी सरस्वती जी का मंदिर है, और परिसर के पूर्वी भाग में महाराजा अग्रसेन जी का मंदिर है। तीन मंदिर तक जाने के लिए अलग अलग सीढियों द्वारा जाया जाता है, जो इस परिसर को महल जैसा अनुभव कराता है।

अग्रोहा धाम का निर्माण करने का फैसला १९७६ में अखिल भारतीय अग्रवाल प्रतिनिधियों के सम्मेलन में किया गया था। श्री कृष्ण मोदी और श्री रामेश्वर दास गुप्ता के नेतृत्व में इस उद्देश्य के लिए ट्रस्ट की स्थापना की गई थी। यह भूमि लक्ष्मी नारायण गुप्ता द्वारा ट्रस्ट को दान दी गई थी। श्री तिलक राज अग्रवाल की देख-रेख में निर्माण कार्य शुरू किया गया था। मुख्य मंदिर का निर्माण १९८४ में पूरा हुआ था, जबकि १९८५ में श्री सुभाष गोयल के नेतृत्व में अन्य सुविधाओं का निर्माण शुरू हुआ था। इस परिसर का रख-रखाव का कार्य अग्रोहा विकास ट्रस्ट द्वारा किया जाता है।

शक्ति सरोवर मंदिर परिसर के पीछे एक बड़ा तालाब है। यह १९८८ में इसे भारत की ४१ पवित्र नदियों के पानी से भरा गया था। परिसर उत्तर-पश्चिम के अंत में समुद्र मंथन के दृश्य को दर्शाया गया है। एक प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र शक्ति सरोवर के

पास स्थित है, जहां योग के माध्यम से उपचार किया जाता है। परिसर के निकट एक नौकायन स्थल के साथ एक मनोरंजन पार्क बनाया गया है।

अग्रोहा धाम में सभी हिन्दू पर्व मनाये जाते है। मंदिर का आध्यात्मिक वातावरण श्रद्धालुओं के दिल और दिमाग को शांति प्रदान करता है। अग्रोहा महा कुंभ समारोह हर साल शरद पूर्णिमा पर आयोजित होता है।

अग्रोहा राज्य की सीमा इतिहासकारों ने उत्तर में हिमालय पर्वत, पंजाब की नदियाँ, दक्षिण और पूर्व में गंगा, पश्चिम में यमुना से लेकर मारवाड़ तक फैला हुआ बताया है।

भद्रान रोहितकांशचैव आग्रेयान मालवानपि।
गणान् सर्वान् विनिर्जित्य नीतिकृत प्रहसन्निव॥
(महाभारत वनपर्व)

१९३८ में हुई अग्रोहा की खुदाई ने इतिहास के अनेक दबे हुए तथ्यों को प्रदर्शित किया है। खुदाई में बर्तन सिक्के, मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। सिक्कों पर "अगोंदक अगाच्च जनपद" लिखा हुआ है। सिक्कों की दूसरी ओर वृषभ या वेदिका की आकृति बनी हुई है। मिट्टी के बने हुए बर्तन, ईंटों के बने मकान, पानी निकलने की समुचित व्यवस्था के लिए नालियां बनी मिली है। खुदाई ने यह सिद्ध कर दिया है कि अपने समय में अग्रोहा एक वैभव शाली राज्य था।

अग्रोहा और लक्खी तालाव

अग्रोहा में लक्खी तालाव का उल्लेख मिलता है, जो मीलों विस्तार में फैला हुआ था। लक्खी नाम का एक बंजारा आजीविका की खोज में अग्रोहा पहुँचा। अग्रोहा में सेठ श्री हरभजन शाह के विषय में सुना जो उस समय लोक परलोक की शर्त पर ऋण देते थे। बगैर सोचे समझे एक बंजारे ने एक लाख रुपये का ऋण परलोक में चुकाने के करार पर ले लिया। बाद में बंजारे को लगा कि परलोक में ऋण न चुका पाने की हालत में सेठ का बैल बन कर ऋण चुकाना पड़ेगा। इस त्रुटि के पश्चाताप स्वरूप बंजारे ने ऋण लौटाने की सोची, परन्तु सेठ ने रुपया वापस नहीं लिया। इस पर बंजारे ने एक विशाल तालाब का निर्माण करवाया और तालाब पर पानी उपयोग हेतु जो भी नर-नारीआता,बंजारा यह कह कर वापस लौटा देता कि यह तालाब सेठ श्री हरभजन शाह का व्यक्तिगत तालाब है, आप इसका उपयोग नही कर सकते। इस बात का पता जब सेठ श्री हरभजन शाह को लगा तो उन्होने लक्खी बंजारे को बुला कर उसे

इसी लोक में ऋण से मुक्त कर दिया। इस तालाब के अवशेष अब भी अग्रोहा में देखने को मिलते हैं।

सेठ श्री हरभजनशाह और केसर लदे उँट

एक किंवदन्ती के अनुसार श्री चन्द नाम के एक साहूकार ने केसर से लदे १,१०० उँट बेचने के लिए भेजे। शर्त थी कि केसर उसी को बेची जा सकती है जो सभी माल एक साथ खरीदे। जब उँट का काफिला गंतव्य स्थान पहुँचा तो सेठ श्री हरभजन शाह को पता लगा कि ११०० उँट केसर बिकने आई है, और अभी तक कोई भी खरीददार नही मिला है। सेठ श्री हरभजन शाह ने इसे अपनी आन-बान-शान के विरुद्ध समझा और सारा केसर खरीद कर अपने गोदाम में डलवाने तथा एक ही मुद्रा से भुगतान करने का आदेश दे दिया। उन्होंने कहा कि केसर हवेली को रंग करने के काम आ जाएगी।

सारी केसर एक ही व्यक्ति सेठ श्री हरभजन शाह द्वारा खरीद लिए जाने का वृतान्त जब श्री चन्द ने सुना तो वह आश्चर्य-चकित रह गया। जो व्यक्ति अपनी जाति और राज्य की मान मर्यादा की रक्षा के लिए लाखों रुपये खर्च कर सकता है, उनके रहते उनकी पितृ-भूमि वीरान कैसे पड़ी रह सकती है? श्री चन्द ने सेठ श्री हरभजन शाह को अग्रोहा की पितृ भूमि वीरान पडी हुई थी, इस का वर्णन पत्र में किया, और आग्रह किया कि अग्रोहा को पुन: बसाया जाय। पत्र पढ़ कर सेठ श्री हरभजन शाह ने संकल्प लिया कि वह अपनी पितृ भूमि अग्रोहा का पुन: निर्माण करेंगे। उन्होने समाज के अन्य लोगों के सहयोग से अग्रोहा पुन: आबाद किया।

शीला माता और अग्रोहा

अग्रोहा की थेह मे सतीओं की मढ़ीयां हैं। इन्ही मढ़ीओं में एक मढ़ी सुश्री शीला माता की है। सुश्री शीला माता की अग्रवालों में बड़ी मान्यता है। प्रति वर्ष भाद्रपद अमावस्या को दूर दूर से अग्रबन्धु अपने बच्चों के मुंडन के लिए यहां आते हैं। अब इस मढ़ी पर एक भव्य मंदिर बनवा दिया गया है।

एक किंवदन्ती के अनुसार सुश्री शीला सेठ श्री हरभजन शाह की पुत्री थी। सुश्री शीला का विवाह सियालकोट के दीवान श्री महता शाह से हुआ था। सुश्री शीला बहुत ही रूपवती, गुणवती, सदाचारिणी व पतिव्रता थी। जब उसकी ख्याति सियालकोट के राजा रिसालु के कानो में पड़ी तो वह मन ही मन सुश्री शीला को चाहने लगा। रिसालु ने सुश्री शीला व श्रीमहेता शाह के सम्बन्धों में विष घोलना शुरू किया और अंत में राजा रिसालु अपने षड्यंत्र में सफल हो गया। श्री महता शाह ने सुश्री शीला का

परित्याग कर दिया। श्रीशीला एक दिन इसी दुःखी अवस्था में पति का घर छोड़ प्राण त्यागने के लिए निकल पड़ी, और असुध अवस्था में पितृ-गृह पहुच गई। वास्तविकता का बोध होने पर श्री महता शाह को बड़ा दुख हुआ और सुश्री शीला की खोज करते करते अग्रोहा के समीप के जंगल में पहुँच गया, जहाँ वह भूख प्यास से व्याकुल मूर्छित हालत में शीला - शीला की रट लगाए जा रहा था। नगर सेविका ने श्री महता शाह को पहचान लिया और इसकी सूचना सुश्री शीला को दी। परन्तु जब तक सुश्री शीला वहा पहुँची श्री महता शाह के प्राण पखेरू उड़ चुके थे। सुश्री शीला को बड़ा दुख हुआ और उसने भी अपने प्राण वही त्याग दिए। दोनों का अन्तिम संस्कार एक साथ किया गया ।सुश्री शीला के पवित्र पतिव्रता धर्म, निश्चल प्रेम की गाथा आज भी अग्रोहा की भूमि में गूँज रही है।

अग्रोहा- पाँचवा धाम

४ अप्रैल १९७६ को अखिल भारतीय अग्रवाल प्रतिनिधि सम्मेलन ने अपने प्रथम सम्मेलन नई दिल्ली में यह प्रस्ताव पारित किया कि अग्रोहा का पुनः निर्माण किया जाए। उसी के अन्तर्गत ९ मई १९७६ को अग्रोहा विकास ट्रस्ट का गठन किया गया और २१ सितम्बर १९७६ को अग्रोहा निर्माण शिलान्यास समारोह का आयोजन किया गया। लम्बे समय से एक खेडे (थेह) के रूप में दबा अग्रोहा पुकार-पुकार कर आर्तनाद कर रहा था, " हे मेरे वंशजो, तुमने देश के निर्माण और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, तुम्हे लक्ष्मीजी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ है, स्थान स्थान पर मंदिर, धर्मशालाएं, शिक्षा संस्थान, चिकित्सालयों की स्थापना की है, अतः मेरा भी पुनःनिर्माण करो।"

वह सपना आज साकार हो रहा है। अग्रोहा को अग्रवाल समाज के पाँचवें धाम के रूप में विकसित करने का पिछले २० वर्ष से लगातार कार्य चल रहा है । काफी कुछ कार्य हुआ है, और हो रहा है। जिसका संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत है।

१. **महाराजा अग्रसेन प्राचीन मन्दिर**: वर्तमान परिसर से आगे महाराजा अग्रसेन जी के प्राचीन मन्दिर का जीर्णोद्घार किया गया है।

२. **कुल देवी महालक्ष्मी मन्दिर**: इस मन्दिर मे कमलासन पर स्थित चतुर्भुजी माँ महालक्ष्मीजी की प्रतिमा बड़ी ही चित्ताकर्षक है। मन्दिर की भव्य १८० फुट ऊंची गुंबद की प्राण प्रतिष्ठा सिद्ध पीठ के रूप हुई। यहाँ मनौती मनाने से सिद्धि होती है, ऐसा लोगों का विश्वास है।

३. **प्राचीन गौशाला**: यहां गौशाला की स्थापना की गई है। गौशाला का आधुनिक साज सज्जा से युक्त नया भवन दर्शनीय है।

४. **महाराजा अग्रसेन नया मन्दिर**: महाराजा अग्रसेन जी का नया मन्दिर, जिसमें अग्रसेन जी की राजसी वेश में प्रतिमा अत्यंत ही मनोहारी एवं चित्ताकर्षक है।

५. **वीणावादिनी सरस्वती का मन्दिर**: लक्ष्मी के साथ सरस्वती की आराधना अपेक्षित है। बिना विवेक व बुद्धि के लक्ष्मी स्थायी नही रहतीं। महालक्ष्मी मन्दिर के पास वीणा-वादिनी सरस्वती माँ का मन्दिर है। सरस्वती की प्रतिमा दिव्य तेज से युक्त है।

६. **शक्ति सरोवर**: ३००-४०० फुट आकार का विशाल शक्ति सरोवर निर्मल जल से भरा रहता है। सरोवर के मध्य भाग में समुद्र-मंथन के दृश्य की झांकी देखने योग्य है। शेषशायी भगवान विष्णु, गजेन्द्र, गंगा - यमुना एवं महाराजा अग्रसेन को लक्ष्मी जी का वरदान की सुन्दर झांकियाँ मन्दिर परिसर के आस पास लगाई गई हैं।

७. **हनुमान मन्दिर**: ७० फुट उँची भगवान मारुति की प्रतिमा विश्व की विशालतम प्रतिमाओं में से एक है।

८. **शीला माता मन्दिर** : शीला माता का भव्य मन्दिर बनाया गया है। अग्रोहा पधारने वाले तीर्थ यात्रियों के दर्शन का विशिष्ट श्रद्धा केन्द्र है। मन्दिर में राधा कृष्ण, सीताराम, अष्टभुजाधारी दुर्गा, शिव, गणेश, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, हनुमानजी आदि देवी-देवताओ के भव्य विग्रह बने हैं।

९. **प्राचीन थेह**: अग्रोहा किसी समय महाराजा अग्रसेन के राज्य की राजधानी थी। कालान्तर मे विदेशी आक्रमणों से यह नष्ट हो गई। इसी नगर के ध्वंस थेह की रेत में ५६६ एकड़ जमीन में फैले पड़े है। खेडे के उपर दिवान नन्नुमल के किलों के खंडहर प्राचीन नगर के अवशेष, ईंटों से बने मकान आदि स्पष्ट दिखाई देते हैं। वर्षा के समय मूर्तियाँ, सिक्के, मिट्टी के पात्र आदि निकलते हैं। थेह की १९३८-३९, १९७५, १९८०-८१ में भारत सरकार के पुरातत्व विभाग की और से खुदाई करवाई गई जिस में पुरातात्विक द्रष्टी से महत्वपूर्ण अनेक प्राचीन वस्तुएँ मिली हैं। इसी थेह पर अग्रवाल

वीर ललनाओं की प्राचीन मढीया हैं, जिन्होने आत्म - सम्मान की रक्षार्थ कभी जौहर की ज्वाला में अपने प्राणों की आहुति दी थी।

महाराजा अग्रसेन ज्योति रथ यात्रा ने १४ अप्रैल १९९५ को अग्रोहा से शुरू होकर पूरे देश का भ्रमण किया है ।

अग्रोहा के उत्सव

चैत्र शुदी पूर्णिमा : हनुमान जी का मेला ।
भाद्रपद अमावस्या : सतीओं का मेला - शीला माता मन्दिर परिसर ।
अश्विन पूर्णिमा : शरद पूर्णिमा को अग्रवालों के कुम्भ का हर वर्ष आयोजन होता है ।

अग्रोहा महात्मय

जिसमें गंगा की पावनता और गीता सी निश्छलता है |
जहाँ तनिक उलीचो माटी तो समता का दीपक जलता है |
उस अग्रसेन का अग्रोहा, जिससे अंधियारी छांटी थी |
जिसे के आगे श्रद्धा से टेक दिया था माथा,
वह अग्रोहा की धरती है .....

भगवान् अग्रसेन पूजन विधि एवं आरती

पूजा सामग्री

गणेश भगवान्, कुलदेवी माँ लक्ष्मी एवं अग्रसेन भगवान् के चित्र
पुष्प/माला
रोली/कुंकुम
चन्दन
अक्षत/चावल
दिया/बाती
घी
अगरबत्ती/ धूपबत्ती
जल का लोटा
नेवैद्य (फल/ मिठाई)

गणेश भगवान्, कुलदेवी माँ लक्ष्मी एवं अग्रसेन भगवान्, के चित्रों को एक उच्च स्थान पर स्थापित करें।

मुख्य यजमान को आमंत्रित कर उन्हें चित्रों के समक्ष स्थान दें।

मुख्य यजमान द्वारा चित्रों को पुष्प मालाओं से अलंकृत कराएं।

मुख्य यजमान द्वारा चित्रों को रोली/कुंकुम और अक्षत/ चावलों एवं पुष्प से अलंकृत करें।

श्रद्धा भक्ति के साथ चित्रों के समक्ष घी का दीपक जलाएं।

उसके बाद अगरबत्ती/धूपबत्ती जलाये।

हाथों में जल, फूल व चावल लें. गणेश भगवान्, कुलदेवी माँ लक्ष्मी एवं अग्रसेन भगवान् का स्मरण करते हुए चित्रों के समक्ष जमीन पर छोड़ दें।

अब गणेश भगवान् जी का आवाहन करें।

ओं, ओं, ओं ।

हे हेरम्ब त्वमेह्येहि ह्यम्बिकात्र्यम्बकात्मज
सिद्धि-बुद्धि पते त्र्यक्ष लक्षलाभ पितुः पितः
नागस्यं नागहारं त्वां गमराजं चतुर्भुजम्
भूषितं स्वायुधौदव्यैः पाशांकुशपरश्वधैः
आवाह्यामि पूजार्थ रक्षार्थ च मम् कृतोः
इहागत्य गृहाम त्वं पूजां यागं च रक्ष मे
ऊँ सिद्धि-बुद्धि सहिताय श्री महागणाधिपतये
नमः आवाहयामि-स्थापयामि ।

अब कुलदेवी माँ लक्ष्मी का आवाहन करें ।

सर्वलोकस्य जननीं सर्वसौख्यप्रदायिनीम ।
सर्वदेवमयीमीशां देवीमावाहयाम्यहम् ॥
ॐ तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥

अब भगवान् अग्रसेन का आवाहन करें ।

मेघाम मह्यम श्री गर्गाचार्याः.
मेघाम भगवान् अग्रसेन ददुः.
मेघाम मह्यम अग्रसेनः
मेघाम अग्रसेन ददातु में

अब भगवान् अग्रसेन का आख्यान प्रारम्भ करें।

महर्षि जैमिनी कहते हैं, श्री अग्रसेन का आख्यान सुख को प्रदान करने वाला है। मानव धर्म की यह पवित्र दिव्य एवं मंगलकारी कथा है। जगत की जीवन नौका को विपत्ति के भंवर में डूबने से बचाने के लिये महामानव श्री अग्रसेन का प्रकाशवान चरित्र आलोक स्तंभ के रुप में विद्यमान है।

एतदाश्चर्यमाख्यानं मया प्रोक्तं सुखावहम् ।
मानवं धर्ममास्थाय कथा पुण्या प्रबोधिता ॥

महाराजा श्री अग्रसेन एवं माता माधवी कर्मयोगी लोकनायक थे जिन्होंने संघर्ष पूर्ण अपने आदर्शमय जीवन कर्मों से सकल मानव समाज को मानवता का पथ दर्शाया। उन दोनों का जीवन दर्शन चैतन्य आनंद की अगणित विशिष्टताओं से सम्पन्न, पवित्र, जगत के सब प्राणियों के लिये सुलभ, एवं सब के लिये सुखद व समस्त जगत में शांति व सद्भाव का प्रदायक था। भ्रमों में भटके वर्तमान विश्व में नवजीवन संचारित करने में सक्षम इस पुरुषार्थ गाथा के संदर्भ में ऋषियों का कथन है।

एवं राजा सम्प्रणीतो मिथ्या व्याशङ्किकतात्मना ।
चकार शान्तिं परमां नृधर्मं जनमेजयात् ॥

महाराज अग्रसेन एवं माता माधवी की दयालुता के उदाहरण हैं। निम्न कथा पढ़ें।

एक बार सम्राट अग्रसेन के राज्य में इंद्र ने कुपित होकर वर्षा बंद कर दी, जिस से राज्य में भयंकर अकाल पड़ा। अकाल की स्थिति में महाराजा अग्रसेन जी ने धन के सारे भंडार प्रजा के लिए खोल दिए। राज्य के अन्य भंडार खाली हो गए । भण्डारी ने राजमहल के उपयोग के लिए कुछ भण्डार बचा लिया था । भूख से प्रजा का बुरा हाल था। महारानी माधवी को जब स्थिति का पता चला, उन्होंने भण्डारी को डांटा और कहा कि राजा पिता के समान होता है। पिता का कर्तव्य है कि स्वयं भूखा रहकर बच्चों की उदर पूर्ति करे। उन्होंने राजमहल की सारी सामग्री अन्न आदि प्रजा में वितरित करा दी। राज परिवार के सदस्यों ने प्रायश्चित हेतु उपवास शुरू कर दिया। सात दिवस महारानी ने निर्जला उपवास किया। सातवें दिन के अंत में माँ को अन्नपूर्णा माता ने दर्शन दिया और आशीर्वाद दिया के तेरे भण्डार हमेशा भरे रहेंगे। माँ माधवी आश्चर्य से देखती हैं कि स्वयं हस्तिनापुर के युवराज भीम १,००० बैल गाड़ियों में अन्न भरकर माँ की सेवा में आ रहे हैं।

तब इष्टगुरु महर्षि गर्ग मुनि आदेश के अनुसार महाराज अग्रसेन ने अपने प्रजा-जनों की खुशहाली के लिए माँ लक्ष्मी की घोर तपस्या की। माँ लक्ष्मी ने परोपकार हेतु की गई तपस्या से खुश हो उन्हें दर्शन दिए, और उनकी प्रजा में कभी धन धान्य एवं अन्न की कमी न होने का आशीर्वाद दिया।

ऐसे महान दयावान हैं महाराज भगवान् अग्रसेन एवं माता माधवी।

हम उनको नमन कर उनके चरणों में अपना मष्तिस्क रख उनसे आशीर्वाद की याचना करते हैं।

अब भगवान् अग्रसेन की आरती करें ।

सम्राट अग्रसेन की आरती

जय श्री अग्र हरे, स्वामी जय श्री अग्र हरे..!
कोटि कोटि नत मस्तक, सादर नमन करें..!! जय श्री!
आश्विन शुक्ल एकं, नृप वल्लभ जय! अग्र वंश संस्थापक, नागवंश ब्याहे..!! जय श्री!
केसरिया ध्वज फहरे, छात्र चवंर धारे! झांझ, नफीरी नौबत बाजत तब द्वारे ..!! जय श्री!
अग्रोहा राजधानी, इंद्र शरण आए! गोत्र अट्ठारह अनुपम, चारण गुंड गाये..!! जय श्री!
सत्य, अहिंसा पालक, न्याय, नीति, समता! ईंट, रूपए की रीति, प्रकट करे ममता..!! जय श्री!
ब्रहम्मा, विष्णु, शंकर, वर सिंहनी दीन्हा! कुल देवी महामाया, वैश्य करम कीन्हा..!! जय श्री!
अग्रसेन जी की आरती, जो कोई नर गाये! कहत त्रिलोक विनय से सुख संम्पति पाए..!! जय श्री!

श्री राम कथा संस्थान द्वारा प्रकाशित अन्य पुस्तक एवं पुस्तिकाएं

हिंदी पुस्तक/ पुस्तिकाएं

श्री विष्णु स्तुति - सहस्त्रनाम हिंदी काव्य (भावार्थ सहित)
ललिता महा त्रिपुरसुन्दरी
शबरी - महान राम भक्त की कथा
महर्षि गौतम
श्री परमहंस रामकृष्ण चालीसा (भावार्थ सहित)
प्रातः स्मरणीय पञ्च कन्याएं
सम्राट अग्रसेन
माँ कैकई का धर्म संकट
माता सहजो बाई - महान श्री कृष्ण भक्त
श्री राम मंदिर अयोध्या - एक संक्षिप्त इतिहास
श्री राम जन्म कथा
गुरु, गायत्री मन्त्र एवं अधिष्ठाता ब्रह्मऋषि विश्वामित्र
श्री साईं महात्मय - हिंदी काव्य (हिंदी भावार्थ के साथ)
आत्मिक अनुभव
स्वर्भानु (राहु एवं केतु)

ENGLISH BOOKS/BOOKLETS

Saint Raidas (Ravidas) - A Short Story
SAINT NARSI BHAGAT– A GREAT DEVOTEE OF LORD KRISHNA
SAINT SAMARTH GURU SWAMI RAMDAS
HOLIKA (SIMHALIKA) – A DISCIPLE OF LORD FIRE
Shri Ram Birth Story
The Great King Agrasen Maharaj - A Brief Introduction
Shrimad Bhagwad Gita Chapter 1

सनातन रत्न त्रैमासिक पत्रिका

सनातन रत्न - वर्ष २०२१, अंक १ (अक्टूबर - दिसंबर २०२१)
सनातन रत्न वर्ष २०२२, अंक १ (जनवरी - मार्च २०२२)

डॉ यतेंद्र शर्मा - सन १९५३ में एक हिन्दू सनातन परिवार में जन्मे डॉ यतेंद्र शर्मा की रूचि बचपन से ही सनातन धर्म ग्रंथों का पठन पाठन एवं श्रवण में रही है। संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने अपने पितामह श्री भगवान् दास जी एवं नरवर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य श्री सालिग्राम अग्निहोत्री जी से प्राप्त की और पांच वर्ष की आयु में महर्षि पाणिनि रचित संस्कृत व्याकरण कौमुदी को कंठस्थ किया। उन्होंने तकनीकी विश्वविद्यालय ग्राज़ ऑस्ट्रिया से रसायन तकनीकी में पी.अच्.डी की उपाधी विशिष्टता के साथ प्राप्त की। सन १९८९ से डॉ यतेंद्र शर्मा अपने परिवार सहित पर्थ ऑस्ट्रेलिया में निवास कर रहें हैं, तथा पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के खनन उद्योग में कार्य रत हैं।

सन २०१६ में उन्होंने अपने कुछ धार्मिक मित्रों के साथ एक धार्मिक संस्था 'श्री राम कथा संस्थान पर्थ' की स्थापना की। यह संस्था श्री भगवान् स्वामी रामानंद जी महाराज (१४वीं- १५वीं शताब्दी) की शिक्षाओं से प्रभावित है तथा समय समय पर गोस्वामी तुलसी दास जी रचित श्री राम चरित मानस एवं अन्य धार्मिक कथाओं का प्रवचन, सनातन धर्म के महान संतों, ऋषियों, माताओं का चरित्र वर्णन एवं धार्मिक कथाओं के संकलन में अपना योगदान करने का प्रयास करती है।

श्री राम कथा संस्थान पर्थ

कार्यालय: ३५ मायना रिट्रीट, हिलरीज, पर्थ, ऑस्ट्रेलिया – ६०२५
वेबसाइट: https://shriramkatha.org
ई-मेल: srkperth@outlook.com
टेलीफोन: +६१ (०८) ९४०१ १५४३